संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

मूल्य : रु. ६/-
अंक : १८२
फरवरी २००८

शिवरात्रि : ६ मार्च

गुरुमंत्रो मुखे यस्य तस्य सिद्ध्यन्ति नान्यथा । दीक्षया सर्वकर्माणि सिद्ध्यन्ति गुरुपुत्रके ॥

जिसके मुख में गुरुमंत्र है उसके सब कर्म सिद्ध होते हैं दूसरे के नहीं । दीक्षा के कारण शिष्य के सर्वकार्य सिद्ध हो जाते हैं।

- भगवान शिवजी

ऋषि प्रसाद
मासिक पत्रिका

वर्ष : १८ अंक : १८२
फरवरी २००८ मूल्य : रु. ६-००
माघ-फाल्गुन वि.सं.२०६४

सदस्यता शुल्क (डाक खर्च सहित)
भारत में
(१) वार्षिक : रु. ६०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-
नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-
अन्य देशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक : US $ 80
(४) आजीवन : US $ 200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक
भारत में	७०
नेपाल, भूटान व पाक में	९०
अन्य देशों में	US $ 20

कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नकद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

कार्यालय : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
ऋषि प्रसाद से संबंधित कार्य के लिए फोन नं. : (०७९) ३९८७७७१४, ६६११५७१४.
अन्य जानकारी हेतु फोन : (०७९) २७५०५०१०-११, ३९८७७७८८, ६६११५५००.
e-mail : ashramindia@ashram.org
: ashramindia@gmail.com
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : विनय प्रिंटिंग प्रेस, ''सुदर्शन'', मिठाखली अंडरब्रीज के पास, नवरंगपुरा, अहमदाबाद - ३८०००९. गुजरात
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

यतो धर्मस्ततो अभ्युदयः

- पूज्य बापूजी

संत कबीरजी ने कहा है :

भलो भयो गँवार जाहि न व्यापी जग की माया ।

यदि कोई वासनापूर्ति के लिए होशियार बन रहा है, विद्वान बन रहा है तो इससे तो वह अज्ञानी रहता तो अच्छा था, गँवार रहता तो अच्छा था । कोई चाहे कितने भी प्रमाणपत्र पा ले, कितने भी पद पा ले लेकिन जीवन में अगर कष्ट सहकर धर्म पालने की रुचि नहीं है तो यह सच्चा विकास नहीं है, पूर्ण विकास नहीं है । बड़ी नौकरी मिल गयी, कई मकान बना लिये... यह सच्चा विकास नहीं है । इनके होने-न होने पर भी आपके चित्त में वही आत्म-अमृत की धारा बहती रहे, रोम-रोम में रमनेवाला आपका सत्-चित्-आनंद स्वभाव चमचमाता रहे यही सच्चा विकास है । फिर चाहे खाने को रोटी हो या न हो, पहनने को वस्त्र हो-न हो, वाहवाही के बदले चाहे सारी दुनिया निंदा ही क्यों न करे । चाहे शूली पर ही क्यों न चढ़ना पड़ा हो लेकिन मंसूर ने **'अनलहक'** कह के अपने धर्म को निभाया था । सुकरात, जनक ने भी अपने धर्म को निभाया था । राम-सीता तो धर्म के साक्षात् विग्रह थे ।

धर्म-पालन के प्रति लापरवाही करते हैं इसलिए उन्नति नहीं होती । शीघ्र उन्नति के लिए धर्म का पालन करो । विश्वात्मा परमेश्वर को अपने हृदय में धारण करना और कष्ट सहकर भी अपना कर्तव्य पालना इसीका नाम 'धर्म' है । प्रलोभन देखकर अथवा स्वार्थ देखकर माँ-बाप की बात मानी - यह कोई धर्म-पालन नहीं हुआ ।

लोग धर्म की व्याख्या पुस्तकों में पढ़कर रख देते हैं लेकिन जीवन में धर्म की व्याख्या प्रत्यक्ष दिखे ऐसा कोई व्यक्तित्व है तो वह है श्रीरामजी का । **रामो विग्रहवान् धर्मः ।** भगवान श्रीराम विग्रहवान धर्म हैं । कैकेयी ने पुराने वरदान के बल पर भगवान रामजी को नंगे पैर वन जाने की आज्ञा दिलायी । तब रामजी ने कहा : ''हमारा संकल्प है पिता के, माँ के संकल्प को पूरा करना ।'' कठिनाई की ओर न देखकर रामचन्द्रजी कर्तव्य में लग गये ।

रामजी का धर्म कितना महान है कि वे आँखों से वह नहीं देखते जो देखना नहीं चाहिए, मुँह से वह नहीं बोलते थे जो बोलकर मुकरना पड़े अथवा झूठा साबित होना पड़े । वे अंतःकरण में कपट रखकर बातें नहीं करते । श्रीरामचन्द्रजी ऐसा नहीं खाते थे जिससे बुद्धि मंद हो, भद्दी हो अथवा राग-द्वेष बढ़े । श्रीरामचन्द्रजी का भ्रातृ-प्रेम इतना उत्कट था कि उन्हें स्वादिष्ट भोजन दिया जाता तो वे लक्ष्मण को खिलाये बिना नहीं खाते थे, उनके आये बिना नहीं सोते थे । गुरुकुल में खेलकूद के समय देखते कि अब मेरे पक्ष में जीत आ रही है और लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, दूसरे विद्यार्थी हार जायेंगे, मायूस हो जायेंगे तो उनकी मायूसी हर के उत्साह भरने के लिए हार-जीत को सपना और साक्षी चैतन्य को अपना जाननेवाले, हार-जीत को व्यावहारिक सत्ता में देखनेवाले और 'स्व' में स्थित पारमार्थिक सत्ता के प्रेमी रामचन्द्रजी स्वयं जानबूझकर हार जाते तथा उनको जिता देते थे । सबका उत्साह, सूझबूझ, आनंद, ज्ञान बढ़े इस ढंग के आचरण ने धर्मात्मा राम को विग्रहवान धर्म बना दिया ।

श्रीरामचन्द्रजी वन-गमन के समय सीताजी

को बोलते हैं : ''तुम घर में रहो ।'' सीताजी ने रामजी की यह बात नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दी । रामजी को विनती की और ऐसी शास्त्रीय बात सुनायी कि रामजी को उनकी विनती स्वीकार करनी पड़ी । लक्ष्मणजी ने भी प्रीतिपूर्वक ऐसी प्रार्थना की तो उन्हें भी रामजी ने साथ ले लिया । सीताजी, रामजी, लक्ष्मणजी अब तापस वेश में हैं । सीताजी कहती हैं : ''हम तपस्वी के वेश में जंगल में घूम रहे हैं तो अब तीर-कमान रखने की क्या जरूरत है ? लोग समझेंगे कि ये तो युद्ध के लिए घूम रहे हैं, क्षत्रिय हैं । यहाँ किसी ऋषि के आश्रम में शस्त्र रख देने चाहिए । जब लौटेंगे तब अयोध्या ले चलेंगे । अभी हम कंद-मूल खाते हैं, ऋषियों जैसा वेश बनाये हुए हैं और ध्यान-भजन भी करते हैं फिर मार-काट का साधन साथ में रखना यह तो धर्म नहीं है ।''

सीताजी को धर्म के प्रति कितना आदर है और धर्म की व्यावहारिकता खोजने में उनकी कितनी तत्परता है ! लेकिन रामजी भी धर्म की सूक्ष्मतम बात जानने और कहने में पीछे नहीं रहते । ऐसा नहीं कहते कि ''मैं तो रखूँगा । तुम कौन होती हो बोलनेवाली ?'' नहीं । रामजी कहते हैं : ''सीते ! देखो, मैंने सत्पुरुषों की सेवा का प्रण किया है । जो दुष्ट लोग समाज में आतंक फैला रहे हैं, असुर हैं, जिनकी नीच प्रकृति से साधु पुरुषों को कष्ट हो रहा है, मैं उनको नष्ट करूँगा । मैं अपना वचन पालने में पीछे नहीं हटूँगा । मैं तुम्हारा, भाई लक्ष्मण का त्याग कर सकता हूँ लेकिन अपना धर्म, दिया हुआ वचन तो पालूँगा ही ।'' सीताजी का सिर झुक गया ।

धर्म-पालन में सीताजी भी ऐसी ऊँचाई पर हैं कि उनका जीवन-चरित्र सुनकर हृदय गद्‌गद होता है । जब अशोक वाटिका में हनुमानजी ने देखा कि सीताजी कैसे जी रही हैं राक्षसियों के बीच; राक्षसियाँ ताने मारती हैं और उनके साथ कैसा-कैसा व्यवहार करती हैं ! सीताजी दुबली-पतली, मरणासन्न हो गयी हैं । हनुमानजी से सहा नहीं गया । बोले : ''माँ ! हम कब पुल बाँधेंगे और कब आयेंगे, तब तक आप इतनी पीड़ा क्यों सहती हो ? आप चलो मेरे साथ । मैं आपका बेटा हूँ, बालक हूँ । मेरे कंधे पर बैठिये । आप चिंता मत करना कि राक्षस देख लेंगे और विरोध करेंगे । माँ ! मैं उनसे निपट लूँगा और आपको रामजी के चरणों में पहुँचा दूँगा ।''

सीताजी जानती थीं कि मेरा पवनसुत पूर्ण समर्थ है । मेरे प्रभु का विश्वसनीय है और प्रभु ने अँगूठी भी इसीके हाथों भेजी है लेकिन सीताजी हनुमानजी के साथ नहीं आती हैं । सीताजी क्या कहती हैं ?

सीताजी कहती हैं : ''रावण साधुवेश में आया था और मैं भिक्षा देने के निमित्त ही लक्ष्मण-रेखा लाँघकर गयी । हनुमान ! तब श्रीराम भी नहीं थे और लखन भैया भी नहीं थे। मैं अकेली, विवश थी और रावण जबरदस्ती मुझे उठाकर ले आया; तभी मेरा बलात् परपुरुष से स्पर्श हुआ । अभी मैं जानबूझकर तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकती क्योंकि सती के लिए यह अधर्म होगा । मैं कष्ट सहूँगी लेकिन अधर्मपूर्वक रामजी के चरणों में नहीं जाऊँगी ।''

देखो सीताजी के जीवन में धर्म-पालन ! धर्म की साक्षात् मूर्ति हैं माँ सीता ! 'वाल्मीकि रामायण' का एक-एक पात्र साक्षात् धर्म की मूर्ति है । कठिनाई होते हुए भी धर्म पर टिका रहे वही तो धर्मात्मा है । अनुकूलता में धर्म पाल लिया और प्रतिकूलता आने पर धर्म-पालन में पलायनवादी बन गये तो फिर जीवन में उस धर्म-पालन का निखार नहीं आता ।

सीताजी आगे कहती हैं : ''हनुमान ! रावण

तो मुझे चुराकर ले आया था, अब तुम भी मुझे चुरा ले जाओगे तो यह धर्म होगा क्या ? नहीं। हम अधर्म का प्रत्युत्तर अधर्म से देंगे ? मेरे लाल ! मेरी पीड़ाएँ देखकर तुम्हारा हृदय द्रवित हो रहा है लेकिन पीड़ाएँ तो शरीर और मन को हो रही हैं, मैं तो 'राम-राम' रटते-रटते राम-रस से तृप्त हो रही हूँ। अपने कर्तव्य-पालन का संतोष मुझे मिल रहा है। श्रीरामजी का कर्तव्य है कि वे रावण के साथ युद्ध करें। असुरों का नाश करने का उनका संकल्प पूरा होगा और उनके कार्य में मैं सहभागी बनूँगी। ऐसे में पीड़ा से भाग चलूँ तो रामजी के कार्य में विघ्न डालनेवाली बनूँगी।''

अब हनुमान क्या कहें ? सिर झुकाकर माँ के चरण अपने दिल में धारण कर रहे हैं कि 'मैं धन्य हूँ कि ऐसी धर्ममूर्ति माँ सीता और प्रभु रामजी की सेवा तथा उनके दर्शन का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। वेदों के प्रकाश में, धर्मस्वरूप राम के काज में समाज को सर्वांगीण विकास का सूर्योदय देने में मैं भागीदार बन रहा हूँ। मैया ! तुम्हारी और मेरे रामजी की जय हो।'

सीता-राम की जय करनेवाले हनुमान की जय में कहाँ कमी रही ?

राम लक्ष्मण जानकी, जय बोलो हनुमान की।

धर्म एक-एक को क्या चमका देता है ! एक-एक को कितना उन्नत कर देता है !

यतो धर्मस्ततो जयो यतो धर्मस्ततो अभ्युदयः।

'जहाँ धर्म है वहीं विजय है, जहाँ धर्म है वहीं वास्तविक उन्नति है।'

हनुमानजी का धर्म-पालन देखो। मैनाक पर्वत समुद्र से ऊपर उठा और बोला : ''हे पवनपुत्र ! उड़ान भर-भर के आप थक गये होंगे। मुझ पर रघुकुल का बड़ा बोझ है। मैं रघुकुल के सेवक की थोड़ी सेवा करके बोझ हलका कर लूँ। आप मुझ पर विराजिये, विश्राम कीजिये। बाद में लंका जाइये।''

हनुमानजी कहते हैं : **''राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम।** मैं रामजी के कार्य को पूरा किये बिना विश्राम का ख्याल कैसे कर सकता हूँ ? मेरे रामजी का कार्य ही मेरे लिए सच्चा विश्राम है।''

हम भाग्यशाली हैं कि जिस परम्परा में हमारा जन्म हुआ है वहाँ धर्म व्यवहार में भी प्रत्यक्ष दर्शन दे रहा है। सनातन संस्कृति की व्याख्या हित की प्रधानता से होती है। अगर शल्य चिकित्सा (ऑपरेशन) से ही रोग ठीक हो सकता हो तो वह कर दो। कहीं अहिंसा धर्म है तो कहीं-कहीं हिंसा करना भी धर्म हो जाता है। बहू-बेटी या राष्ट्र पर खतरा हो और हम बोलें : **'अहिंसा परमो धर्मः'** तथा हाथ पर हाथ रखकर बैठ जायें, गोली-बम न चलायें तो यह अहिंसा भी बड़ी हिंसा को बुलानेवाली हो जाती है, अधर्म हो जाती है।

अगर अर्जुन युद्ध के धर्म का आचरण नहीं करते तो आतंक को रोककर अहिंसा की प्रतिष्ठा करने में सफल भी नहीं होते। कौन-सा कर्म हिंसा है और कौन-सा अहिंसा इसकी व्याख्या सनातन संस्कृति में है। क्या सूक्ष्मतम सूझबूझ देती है यह वैदिक संस्कृति ! यह मनुष्यमात्र की संस्कृति है। मनुष्य जिस किसी वर्ग में हो, समाज में हो, देश में हो, व्यवसाय में हो इसका अनुसरण करने से उसकी वासना नियंत्रित होगी। वैदिक धर्म वासना को नियंत्रित करके उपासना में चार चाँद लगा देता है और उपासना अपने अंदर छुपे हुए परम सत्य को प्रकट कर देती है। □

सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन्।
धर्मात्मा को सत्य की नाव पार लगाती है।
(ऋग्वेद : ९.७३.१)

सत्येनोत्तभिता भूमिः।
सत्य से पृथ्वी प्रतिष्ठित है।
(ऋग्वेद : १०.८५.१)

कल्याणमय शिव के पूजन की रात्रि : महाशिवरात्रि

(महाशिवरात्रि पर्व : ६ मार्च)

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी अर्थात् महाशिवरात्रि पृथ्वी पर शिवलिंग के प्राकट्य का दिवस है और प्राकृतिक नियम के अनुसार जीव-शिव के एकत्व में मदद करनेवाले ग्रह-नक्षत्रों के योग का दिवस है। इस दिन रात्रि-जागरण कर ईश्वर की आराधना-उपासना की जाती है।

'शिव' से तात्पर्य है 'कल्याण' अर्थात् यह रात्रि बड़ी कल्याणकारी रात्रि है । इस रात्रि में जागरण करते हुए **ॐ... नमः... शिवाय...** इस प्रकार प्लुत जप करें, मशीन की नाईं जप, पूजा न करें, जप में जल्दबाजी न हो । बीच-बीच में आत्मविश्रांति मिलती जाय। इसका बड़ा हितकारी प्रभाव, अद्भुत लाभ होता है। साथ ही अनुकूल की चाह न करना और विपरीत परिस्थिति से भागना-घबराना नहीं। यह परम पद में प्रतिष्ठित होने का सुंदर तरीका है। महाशिवरात्रि को भक्तिभावपूर्वक रात्रि-जागरण करना चाहिए। 'जागरण' का मतलब है जागना। जागना अर्थात् अनुकूलता-प्रतिकूलता में न बहना, बदलनेवाले शरीर-संसार में रहते हुए अबदल आत्मशिव में जागना। मनुष्य-जन्म कहीं विषय-विकारों में बर्बाद न हो जाय बल्कि अपने लक्ष्य परमात्म-तत्त्व को पाने में ही लगे- इस प्रकार की विवेक-बुद्धि से अगर आप जागते हो तो वह शिवरात्रि का 'जागरण' हो जाता है। इस जागरण से आपके कई जन्मों के पाप-ताप, वासनाएँ क्षीण होने लगती हैं तथा बुद्धि शुद्ध होने लगती है एवं जीव शिवत्व में जागने के पथ पर अग्रसर होने लगता है।

महाशिवरात्रि का पर्व अपने अहं को मिटाकर लोकेश्वर से मिलने के लिए है। आत्मकल्याण के लिए पांडवों ने भी शिवरात्रि महोत्सव का आयोजन किया था, जिसमें सम्मिलित होने के लिए भगवान श्रीकृष्ण द्वारिका से हस्तिनापुर आये थे। जिन्हें संसार से सुख-वैभव लेने की इच्छा होती है वे भी शिवजी की आराधना करते हैं और जिन्हें सद्गति प्राप्त करनी होती है अथवा आत्मकल्याण में रुचि है वे भी शिवजी की आराधना करते हैं।

जल, पंचामृत, फल-फूल एवं बिल्वपत्र से शिवजी का पूजन करते हैं। बिल्वपत्र में तीन पत्ते होते हैं जो सत्त्व, रज एवं तमोगुण के प्रतीक हैं। हम अपने ये तीनों गुण शिवार्पण करके गुणों से पार हो जायें, यही इसका हेतु है। पंचामृत-पूजा क्या है ? पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश- इन पंचमहाभूतों का ही सारा भौतिक विलास है। इन पंचमहाभूतों का भौतिक विलास जिस चैतन्य की सत्ता से हो रहा है उस चैतन्यस्वरूप शिव में अपने अहं को अर्पित कर देना, यही पंचामृत-पूजा है। धूप और दीप द्वारा पूजा से क्या तात्पर्य है ? **'शिवोऽहम्, आनन्दोऽहम्'** (मैं शिवस्वरूप हूँ, आनन्दस्वरूप हूँ) इस भाव में तल्लीन होकर अपने शिवस्वरूप, आनन्दस्वरूप की सुवास से वातावरण को महकाना ही धूप करना है और आत्मज्ञान के प्रकाश में जीने का संकल्प करना दीप प्रकटाना है।

चाहे जंगल या मरुभूमि में क्यों न हो, रेती या मिट्टी के शिवजी बना लिये, उस पर पानी के छींटे मार दिये, जंगली फूल तोड़कर धर दिये

और मुँह से ही नाद बजा दिया तो शिवजी प्रसन्न हो जाते हैं एवं भावना शुद्ध होने लगती है, आशुतोष जो ठहरे ! जंगली फूल भी शुद्ध भाव से तोड़कर शिवलिंग पर चढ़ाओगे तो शिवजी प्रसन्न हो जाते हैं और यही फूल कामदेव ने शिवजी को मारे तो शिवजी नाराज हो गये । क्यों ? क्योंकि फूल मारने के पीछे कामदेव का भाव शुद्ध नहीं था, इसीलिए शिवजी ने तीसरा नेत्र खोलकर उसे भस्म कर दिया । शिवपूजा में वस्तु का मूल्य नहीं, भाव का मूल्य है । **भावे हि विद्यते देवः ।**

आराधना का एक तरीका यह है कि उपवास रखकर पुष्प, पंचामृत, बिल्वपत्रादि से चार प्रहर पूजा की जाय । दूसरा तरीका यह है कि मानसिक पूजा की जाय । हम मन-ही-मन भावना करें :

ज्योतिर्मात्रस्वरूपाय निर्मलज्ञानचक्षुषे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये ॥

'ज्योतिमात्र (ज्ञानज्योति अर्थात् सच्चिदानंद, साक्षी) जिनका स्वरूप है, निर्मल ज्ञान ही जिनका नेत्र है, जो लिंगस्वरूप ब्रह्म हैं, उन परम शांत कल्याणमय भगवान शिव को नमस्कार है ।'

'स्कंद पुराण' के ब्रह्मोत्तर खंड में शिवरात्रि के उपवास तथा जागरण की महिमा का वर्णन है :

''शिवरात्रि का उपवास अत्यंत दुर्लभ है । उसमें भी जागरण करना तो मनुष्यों के लिए और दुर्लभ है । लोक में ब्रह्मा आदि देवता और वसिष्ठ आदि मुनि इस चतुर्दशी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं । इस दिन यदि किसीने उपवास किया तो उसे सौ यज्ञों से अधिक पुण्य होता है ।'' □

व्रतेषु जागृहि । आप अपने व्रत-नियमों के प्रति सदा जागृत रहें। (ऋग्वेद : ९.६१.२४)
गृहेष्वर्था निवर्तन्ते श्मशाने चैव बान्धवाः ।
शरीरं काष्ठमादत्ते पापं पुण्यं सह व्रजेत् ।
'धन घर में छूट जाता है, भाई-बंधु श्मशान में छूट जाते हैं, शरीर काष्ठ को सौंप दिया जाता है । जीव के साथ पाप-पुण्य ही जाते हैं ।' (गरुड़ पुराण : ९.३६,३७)

मनाओ सच्ची शिवरात्रि

जीव को शिवत्व में जगाने,
आती है महाशिवरात्रि ।
शिव ही गुरु, गुरु ही शिव हैं,
'शिवगीता' है बतलाती ॥
गुरुद्वार है ऐसा शिवालय,
हो जाय हर कोई मतवाला ।
सद्गुरुशरण हर कोई न जाय,
जाये कोई किस्मतवाला ॥
पूजा शिवस्वरूप सद्गुरु की पूरण,
सफल करे शिवरात्रि ।
सत्त्व, रजस्, तमस् त्रिगुण करें अर्पण,
मनाओ सच्ची शिवरात्रि ॥
बिराजे सद्गुरु ज्ञान-शिखर पर,
रहती अनुपम आत्ममस्ती ।
शीश से उनके ज्ञानगंगा सदा,
रहती है हर पल बहती ॥
सत्संग-सुमिरन से सदा,
गंदगी पापों की है धुलती ।
सद्गुरु से जगाकर ज्ञानदीप,
मनाओ सच्ची शिवरात्रि ॥
राखे ज्ञानरूपी त्रिनेत्र सद्गुरु,
देखे सबको आत्मदृष्टि ।
आशुतोष परम दयाल सद्गुरु,
रखते सब पर दयादृष्टि ॥
पल में करते निहाल सद्गुरु,
करते जिन पे कृपावृष्टि ।
सच्ची सेवा करके सद्गुरु की,
मनाओ सच्ची शिवरात्रि ॥
अधीन सद्गुरु के होता,
सत्त्व, रजस्, तमस् त्रिशूल ।
नैनों में नूरानी नूर रहता,
शक्ति-भक्ति-मुक्ति के मूल ॥
अटूट शक्ति अखूट भक्ति,
देते सद्गुरु अनंत प्रीति ।
भ्रांति सारी सद्गुरु मिटायें,
मनाओ सच्ची शिवरात्रि ॥

- कमलेश (साधक) □

भवबंधन से मुक्ति के लिए...

देवर्षि नारदजी ने कहा : ''हे सर्वज्ञ महामुने ! हे सनकजी ! सबके स्वामी भगवान जनार्दन जिस प्रकार संतुष्ट होते हैं, वह उपाय मुझे बताइये।''

श्री सनकजी बोले : ''नारदजी ! यदि मुक्ति चाहते हो तो सच्चिदानंदस्वरूप, परम देव भगवान नारायण का सम्पूर्ण चित्त से भजन करो।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते ।
तत्त्वं गुरुसमं नास्ति न देवः केशवात्परः ॥

'मैं हाथ ऊँचा करके जोर देकर कहता हूँ कि यह सत्य है, सत्य है और बार-बार सत्य है कि गुरु के समान कोई तत्त्व नहीं और केशव से बढ़कर कोई देवता नहीं है।'

(नारद पुराण, पूर्वार्ध : ३४.९)

मैं सत्य कहता हूँ, हित की बात कहता हूँ और बार-बार सम्पूर्ण शास्त्रों का सार बतलाता हूँ- इस असार संसार में केवल भगवद्-आराधना ही सत्य है। यह संसार-बंधन अत्यन्त दृढ़ है व महान मोह में डालनेवाला है। भगवद्भक्तिरूप कुठार से इसको काटकर अत्यन्त सुखी हो जाओ।

वही मन सार्थक है जो भगवान के चिंतन में लगता है, वे ही कान समस्त जगत के लिए वन्दनीय हैं जो भगवत्कथा की सुधाधारा से परिपूर्ण रहते हैं। नारदजी ! जो आनंदस्वरूप हैं, अक्षर हैं एवं जाग्रत आदि तीनों अवस्थाओं से रहित तथा हृदय में विराजमान हैं, उन्हीं भगवान का तुम निरन्तर भजन करो। मुनिश्रेष्ठ ! जिनका अंतःकरण शुद्ध नहीं है ऐसे लोग भगवान के स्थान या स्वरूप का न तो वर्णन कर सकते हैं और न दर्शन ही। विप्रवर ! यह स्थावर-जंगमरूप जगत केवल भावनामय है और बिजली के समान चंचल है। अतः इसकी ओर से विरक्त होकर भगवान का भजन करो।

जिनमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (आवश्यकता से अधिक कुछ न रखना) विद्यमान है, उन्हीं पर जगदीश्वर श्रीहरि संतुष्ट होते हैं। जो सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति दयाभाव रखते हैं और जो भगवान व उनके भक्तों की कथा में प्रेम रखते हैं, स्वयं भगवान की कथा कहते हैं, साधु-महापुरुषों का संग करते हैं और मन में अहंकार नहीं लाते, उन पर भगवान प्रसन्न रहते हैं। जो भूख-प्यास और लड़खड़ाकर गिरने आदि के अवसरों पर भी सदा भगवन्नाम का उच्चारण करते हैं तथा जो ईर्ष्या व दोषदृष्टि से रहित होकर अहंकार से दूर रहते हैं और सदा भगवद्-आराधन किया करते हैं, उन पर भगवान प्रसन्न होते हैं। अतः देवर्षे ! सुनो, तुम सदा भगवान का भजन करो। शरीर मृत्यु से जुड़ा हुआ है। जीवन अत्यन्त चंचल है। धन पर राजा (शासन) आदि के द्वारा बराबर बाधा आती रहती है और सम्पत्तियाँ क्षणभंगुर हैं। देवर्षे ! क्या तुम नहीं देखते कि आधी आयु तो नींद से ही नष्ट हो जाती है और कुछ आयु भोजन आदि में समाप्त हो जाती है। आयु का कुछ भाग बचपन में, कुछ विषय-भोगों में और कुछ बुढ़ापे में व्यर्थ बीत जाता है। फिर तुम धर्म का आचरण कब करोगे ? बुढ़ापे में भगवान की आराधना नहीं हो सकती, अतः अहंकार छोड़कर युवावस्था में ही धर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए।

मुने ! यह शरीर मृत्यु का निवासस्थान और आपत्तियों का सबसे बड़ा अड्डा है। यह रोगों का घर है तथा मल आदि से सदा दूषित रहता है। फिर

मनुष्य इसे सदा रहनेवाला समझकर व्यर्थ पाप क्यों करते हैं ? यह संसार असार है। इसमें नाना प्रकार के दुःख भरे हुए हैं। निश्चय ही यह मृत्यु से व्याप्त है, अतः इस पर विश्वास नहीं करना चाहिए। इसीलिए विप्रवर ! सुनो, मैं यह सत्य कहता हूँ- देह-बंधन की निवृत्ति के लिए भगवत्पूजा करनी चाहिए। अभिमान और लोभ त्यागकर, काम-क्रोध से रहित हो सदा भगवान का भजन करो क्योंकि मनुष्य-जन्म अत्यन्त दुर्लभ है।

परम श्रेष्ठ ! (अधिकांश) जीवों को कोटि सहस्र जन्मों तक स्थावर आदि योनियों में भटकने के बाद कभी किसी प्रकार मनुष्य-शरीर मिलता है। साधुशिरोमणे ! मनुष्य-जन्म में भी ईश्वर-आराधन की बुद्धि, दान की बुद्धि और योगसाधना की बुद्धि का प्राप्त होना मनुष्यों के पूर्वजन्म की तपस्या का फल है। ब्रह्मन् ! जगदीश्वर भगवान आराधना करने पर मनोवांछित फल देते हैं। फिर संसाररूपी अग्नि में जला हुआ कौन मानव उनकी पूजा नहीं करेगा ? मुनिश्रेष्ठ ! भगवद्भक्त चाण्डाल भी भक्तिहीन ब्राह्मण से बढ़कर है। अतः काम, क्रोध आदि को त्यागकर अविनाशी भगवान का भजन करना चाहिए। उन परमात्मदेव के प्रसन्न होने पर सब संतुष्ट होते हैं क्योंकि वे ही सबके भीतर विद्यमान हैं।'' ('नारद पुराण' से) □

देवी सरस्वती का पूजन-महोत्सव : वसंत पंचमी

माघ मास के शुक्लपक्ष की पंचमी को 'वसंत पंचमी' के रूप में मनाया जाता है। यह ऋतुराज वसंत के आगमन का सूचक पर्व है। इस दिन प्रातःकाल तेल-उबटन लगाकर स्नान किया जाता है और भगवत्पूजा की जाती है। वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की पूजा एवं आराधना का इस दिन विशेष महत्त्व है। वसंत पंचमी को इनका आविर्भाव-दिवस माना जाता है। इस दिन कलश की स्थापना करके उसमें सरस्वती देवी का आवाहन तथा पूजन करें। विद्यार्थी सरस्वती की निम्न नामावली का पाठ करें :

प्रथमं भारती नाम द्वितीयं च सरस्वती।
तृतीयं शारदा देवी चतुर्थं हंसवाहिनी॥
पञ्चमं जगती ख्याता षष्ठं वागीश्वरी तथा।
सप्तमं कुमुदी प्रोक्ता अष्टमं ब्रह्मचारिणी॥
नवमं बुद्धिदात्री च दशमं वरदायिनी।
एकादशं चन्द्रकान्तिर्द्वादशं भुवनेश्वरी॥
द्वादशैतानि नामानि त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः।
जिह्वाग्रे वसते नित्यं ब्रह्मरूपा सरस्वती॥

सितार बंधनों से बँधी है इसीलिए उसमें से मधुर सुर निकलते हैं। समाज बंधनों से बँधा है इसीलिए उसकी व्यवस्थाएँ टिकी हैं। नाव बंधनों से बँधी है इसीलिए वह निश्चित दिशा में दौड़ सकती है। प्रकृति बंधनों से बँधी है तभी समय पर ऋतुएँ बदलती हैं व नये-नये रूप-रंगों की छटाएँ बिखेरती है। चंद्रमा व सूरज भी बंधनों से बँधे हैं इसीलिए दिन व रात होते हैं और कार्य एवं विश्राम के लिए अवकाश प्रदान करते हैं। आपका जीवन भी संयम (ब्रह्मचर्य) के बंधन से बँधा होना चाहिए तभी महानता को प्राप्त होकर चमकेगा।

स्वाभाविक कर्म ही परमेश्वर की पूजा

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है :

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥

'अपने-अपने स्वाभाविक कर्मों में तत्परता से लगा हुआ मनुष्य भगवत्प्राप्तिरूप परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है । अपने स्वाभाविक कर्म में लगा हुआ मनुष्य जिस प्रकार से कर्म करके परम सिद्धि को प्राप्त होता है, उस विधि को तू सुन । जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत व्याप्त है, उस परमेश्वर की अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है ।'

(गीता : १८.४५-४६)

संत कबीरजी इतने प्रेम से ताना बुनते थे कि मानों पूजा कर रहे हैं । राम के लिए ही रुई खरीदते थे, राम के लिए ही धागा बनाते थे और राम के लिए ही कपड़ा बुनते थे । वे जब बाजार में जाते थे तो लोग हैरान हो जाते कि इतना बढ़िया कपड़ा ! कबीरजी कम मुनाफा रखते और जिनके लिए कपड़ा बुनते उन ग्राहकों में राम को निहारते थे । ताना बुननेवाला और ताना जिसके लिए बुना जाता है वे दोनों एक ही हैं । कबीरजी कर्म करते हुए मुक्ति का अनुभव करते थे ।

ऐसे महापुरुष स्वयं तो धन्य हो जाते हैं, साथ ही दूसरों के लिए भी धन्य होने का मार्ग खुला कर देते हैं ।

संत नामदेवजी के यहाँ बहुत साधु-संत आते थे । राजाई उन लोगों के लिए भोजन बनाती थी । उनको भोजन कराते हुए दोपहर के तीन-चार बज जाते । स्वयं भूखे होते हुए भी उन्हें भोजन कराने में जो आनंद आता उसमें वह समाधि का सुख महसूस करती थी ।

गोरा कुम्हार जब मटका बनाते थे तब ऐसा कभी नहीं सोचते कि मटका जल्दी टूटे और ग्राहक दूसरा खरीदे । वे तो ऐसे मजबूत मटके बनाते कि पिता खरीदे उसमें पुत्र-पौत्र भी पानी पीयें । 'जिनके लिए बना रहा हूँ वे रामजी हैं'- ऐसा विचारकर मिट्टी रौंदते थे । मटके को बराबर पकाने के लिए आँच भी कुशलता से देते थे ।

कर्म करने का अपना आनंद होता है । जब कर्म में स्वार्थ होता है, अहंकार होता है या उबान होती है तब कर्म बोझिल बन जाता है । जब कर्म में कर्तव्य-बुद्धि होती है तब वही कर्म सिद्धि देनेवाला बन जाता है ।

मनुष्य स्वकर्म में निःशेष रत रहने से, अपना कर्म ठीक तरह करने से परमेश्वर को संतुष्ट करके उनके प्रसाद से सिद्धि को प्राप्त होता है ।

उद्देश्य ईश्वरप्राप्ति हो; बेईमानी, कपट, भोग-संग्रह नहीं हो, अहंकार का अभाव हो और पूरी लगन व निष्ठा से कर्म किया जाय तो परमात्मा की पूजा हो जाती है । संपूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति नारायण से ही हुई है । सभी परमात्मा के ही रूप हैं । **सब मम प्रिय सब मम उपजाए ।**

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ
दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः ।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य

पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥
तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः
साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि।
प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च
श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ॥

'अग्नि परमेश्वर का मस्तक है, चंद्रमा और सूर्य दोनों नेत्र हैं, दिशाएँ दोनों कान हैं, वेद उनकी वाणी है, वायु प्राण है, जगत हृदय है, इनके दोनों पैरों से पृथ्वी उत्पन्न हुई है। ये ही समस्त प्राणियों के अंतरात्मा हैं और उसी परमेश्वर से वसु, रुद्र आदि अनेक भेदोंवाले देवता, साध्यगण, मनुष्य, पशु-पक्षी, प्राण-अपान वायु, धान, जौ आदि अन्न तथा तप, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य एवं यज्ञ आदि के अनुष्ठान की विधि भी प्रकट हुए हैं।'

(मुंडकोपनिषद् : २.१.४, ७)

जीवन में करने की, मानने की और जानने की शक्ति सबके पास है। कर्म अगर उचित हो तो मनुष्य कर्म से परमेश्वर की पूजा करके मुक्त हो सकता है। मानने की शक्ति का सदुपयोग हो तो मन जहाँ से सारी मान्यताएँ लाता है उस परमेश्वर में विश्रांति मिल जाय। जानने की शक्ति का सदुपयोग हो तो ऐसे तत्त्व को जान सकते हैं, जिसे जानने के बाद और कुछ जानना शेष नहीं रहता।

मनुष्य में कर्म करने की शक्ति तो विपुल है मगर कर्म करने का तरीका वह नहीं जानता तो फिर उन कर्मों के द्वारा बँध जाता है।

विद्युत का हम सदुपयोग करते हैं तो प्रकाश, पंखा, फ्रिज, लिफ्ट आदि से हमारा दैनिक व्यवहार चलता है। गलती से कहीं प्लग में उँगली डाल दें तो विद्युत से मृत्यु भी हो सकती है। कर्म करने का सही तरीका आ जाय तो मनुष्य कर्म के द्वारा मुक्त हो सकता है।

कर्म करते समय उत्साह हो और कर्म जिसके लिए करें उसके प्रति प्रेम हो। प्रेम नहीं है तो कर्म बोझ बन जायेगा। प्रेम है तो कर्म पूजा बन जाता है। कर्म में ऐसा उत्साह हो, ऐसी कुशलता हो कि कर्म करते वक्त आप कर्म ही बन जायें। टूटे, रूखे मन से नहीं, जो काम करें पूरे दिल से करें। जो पूरे दिल से काम नहीं करता वह पूरे दिल से ध्यान भी नहीं कर सकता। जो करो वह पूरा करो। भगवान को प्यार करो, उनका ध्यान करो तो पूरा करो, अपने-आपको बचाकर नहीं। जो कर्म में पूरा उतर आता है उसका आत्मविकास होता है, उसकी योग्यताओं का विकास होता है। जो टूटे-फूटे दिल से कर्म करता है उसको कर्म करने का रस नहीं आता, आनंद नहीं आता। उसका कर्म पूजा नहीं बन पाता, बंधन बन जाता है, बोझ बन जाता है।

उत्कृष्ट कर्म करने की कुंजी यह है कि कर्म करने की रुचि हो, जिसके लिए कर्म कर रहे हैं उसके प्रति प्रेम हो। कर्म के फल को तुच्छ विकारों में नाश न करके जीवन ऊर्ध्वगामी हो, अविनाशी आत्मा का ज्ञान हो - इस भाव से कर्म करो। कर्म के फल की लोलुपता हृदय को कुंठित न करे, यह सावधानी रहे तो कर्म आत्मसिद्धि (आत्मज्ञान) देनेवाला होता है। उद्देश्य आत्म-साक्षात्कार बनाकर ईश्वरप्राप्ति के लिए कर्म करे तो कर्म कर्मयोग हो ज़ाता है। उद्देश्य अगर भोग-संग्रह, दूसरों को नीचा दिखाना, अपना अहंकार पोसना हो तो वही कर्म कर्मबंधन हो जाता है।

समाज के तेजस्वी होने और न होने में यही कारण है। समाज के निस्तेज लोग कर्म में रुचि नहीं रखते और जिनके लिए कर्म करते हैं उनके लिए प्रेम नहीं रखते। उनके जीवन में रस नहीं होता, जीवन में संगीत नहीं गूँजता; जीवन शुष्क हो जाता है।

कुत्ते को भी जो काम सौंप देते हैं उसे वह तत्परता से करता है तो उसकी कीमत होती है, बाकी फालतू कुत्तों को तो पत्थर ही लगते हैं।

ऐसे ही जंगली लोगों को तो धक्के ही मिलते हैं और जो तत्परता से ईश्वरप्राप्ति का उद्देश्य बनाकर कर्म करते हैं, जैसे धन्ना जाट, संत रविदास, शबरी भीलन, नामदेवजी, राजा जनक आदि उनको परमात्मसुख की प्राप्ति हो जाती है ।

भारत में तो अति लापरवाही हो गयी है । यहाँ लोग न कर्म करने में कुशल हैं, न साधना में कुशल हैं । विदेश के लोग कर्म में तो कुशल हैं, साधना का उन बेचारों को पता ही नहीं । हमारे यहाँ साधना का इतना सुगम रास्ता है लेकिन लोग इतने लापरवाह हो गये, इतने सुस्त व आलसी हो गये कि अब देश की स्थिति क्या होगी भगवान जाने ! देश की स्थिति तो चिंताजनक है ही, उससे भी ज्यादा चिंताजनक व्यक्ति की स्थिति है ।

जब आपका तन, मन और जीवन दूसरों के काम आता है तो लोग आप पर सब कुछ न्योछावर कर देते हैं । अगर आप विश्वंभर के काम आओगे तो वह आपको अपने दिल में रखेगा ।

ऐसा कौन-सा नौकर है जो सेठ के काम आता हो और उसे रहने की जगह न मिले, रोटी न मिले, कपड़ा न मिले ? परंतु जो नौकर सेठ के घर रहकर अपने लिए ही चिंतित रहे, सेठ के काम के लिए रुचि न रखे, सेठ के प्रति प्रीति न रखे वह सेठ का कृपाभाजन नहीं हो पाता । ऐसे ही सेठों का सेठ जो परमात्मा है उसके घर को माना संसार को सत्संग के द्वारा, सत्कर्मों के द्वारा सजायें-सँवारें और मधुर बनायें तो वह आपके हृदय को भी मधुर बना देगा, उसमें परमात्मसुख प्रकटा देगा । □

व्रतोपवासैर्यैर्विष्णुर्नान्यजन्मनि तोषितः ।
ते नरा मुनिशार्दूल ग्रहरोगादिबाधिनः ॥

'जिन्होंने पूर्वजन्म में व्रतोपवासों के द्वारा भगवान विष्णु को प्रसन्न नहीं किया, वे मनुष्य ही इस जन्म में ग्रह, रोग, व्याधिकष्ट आदि से पीड़ित रहते हैं ।' **(विष्णुधर्मोत्तर पुराण)**

सेवक कैसा हो ?

बल्ख के बादशाह हजरत इब्राहिम उदार प्रकृति के व्यक्ति थे । उन्होंने एक गुलाम खरीदा । उससे पूछा : ''तेरा नाम क्या है ?''

गुलाम ने उत्तर दिया : ''जिस नाम से आप पुकारें ।''

''तू क्या खायेगा ?''

''जो आप खिलायेंगे ।''

''तुझे कैसे कपड़े पसन्द हैं ?''

''जो आप पहनने को दें ।''

''तू काम क्या करेगा ?''

''जो आप करायें ।''

आखिर बादशाह ने हैरानी से पूछा : ''आखिर तू चाहता क्या है ?''

गुलाम ने शांतिपूर्वक जवाब दिया : ''हुजूर ! गुलाम की अपनी क्या चाह ?''

बादशाह गद्दी से उतरकर उसके गले लगते हुए बोले : ''तुम मेरे उस्ताद हो, तुमने मुझे सिखाया कि खुदाताला के बंदे को कैसा होना चाहिए ।''

जो भक्त प्रभुसेवा, सद्गुरुसेवा करते हैं उन्हें अपनी व्यक्तिगत इच्छा-आकांक्षाएँ नहीं रखनी चाहिए । उनकी एकमात्र इच्छा अपने आराध्य के प्रति अनुकूल बनने की हो । उन्हें अपनी इच्छा को आराध्य की इच्छा में मिला देना चाहिए । ऐसे सेवकों पर अनायास ही भगवान का, गुरु का हृदय बरस पड़ता है । □

'वह बुढ़िया आपके भी पीछे लगी है !'

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

(गतांक का शेष)

'यह मृगचर्म मेरे गुरुजी का आसन ही है। मानो-न-मानो मुझे मृगचर्म ओढ़ाकर गुरुजी कहीं-न-कहीं समाधिस्थ होकर बैठे हैं। कैसे रक्षा करते हैं! ऐसी ठण्डी रात में गुरुदेव के सिवा, संत के सिवा और कौन आ सकता है ? **संत हृदय नवनीत समाना।**'

अब पीछे मुड़ना तो संभव नहीं था। वह आगे-ही-आगे चला। भूख-प्यास लगती तो जंगल से कुछ कंदमूल आदि खा लेता। आठ दिन में वह उस जंगल में दूर-सुदूर निकल गया। फिर कुछ कुटीर जैसा दिखा। नजदीक गया, देखा कि कुटीर के इर्द-गिर्द अद्भुत फूल खिले हैं। और नजदीक गया तो कुटीर के बाहर दो शेर बैठे दिखे। शेरों को देखकर अब वह डरा नहीं क्योंकि शेरों के शेर सद्गुरु के दिये हुए हरिनाम के मानसिक जप और तात्त्विक ज्ञान से उसकी आत्मशक्ति विकसित हो चुकी थी। चित्त की विश्रांति आवश्यक सामर्थ्य देती है और दोषों को मिटाती है। और नजदीक गया तो देखा कि शेर शांत बैठे हैं, फूल खिले हैं, हवाएँ अठखेलियाँ कर रही हैं, गुरुदेव, वही-के-वही महापुरुष समाधि में बैठे हैं, परब्रह्म परमात्मा की समाधि में एकरस !

उसने मृगचर्म को गुरु का प्रसाद समझकर बिछाया, प्रणाम किया। मन-ही-मन गुरु की आज्ञा माँगी कि 'गुरुदेव ! यह मृगचर्म आपने भजन करने के लिए ही ओढ़ाया है, बैठने के लिए दिया है। आपकी प्रसादी अब मेरे को आपके प्रसाद में आगे बढ़ायेगी।' गुरु की प्रसादी उस मृगचर्म को नमन करके वह बैठ गया। महाराज ! एक तो कुदरती शांत वातावरण, वर्षों से गुरुदेव की चरणरज से पावन हुई तपस्यास्थली और दूसरा उसकी भी कुछ साधना थी। संसार से मन उपराम था, तृप्त था। कई साधु-संतों, भूखे-नंगों के आशीर्वाद भी थे कि मंगल हो, तुम्हारा कल्याण हो। असली मंगल और कल्याण तो तब माना जाय कि मन भगवान में लगे। बाकी 'शादी हो गयी, मेरा मंगल हो गया'- ऐसा कोई मूर्ख आदमी भले मान ले, 'पदोन्नति हो गयी, मेरा मंगल हो गया'- ऐसा भी कोई लोभी आदमी मान ले पर ये कल्पित मंगल हैं। असली मंगल तो तब मानिये कि जब मन भगवान में लगे, चित्त में विश्रांति आने लगे, बुद्धि में ब्रह्मजिज्ञासा जगने लग जाय।

वसिष्ठजी महाराज कहते हैं : 'चित्त की शीतलता बड़ी तपस्या का फल है, हृदय की शांति बड़े पुण्यों का फल है।'

वह तो ध्यानस्थ हो गया। गुरुजी की समाधि खुली और उन्होंने देखा कि अच्छा, दानाध्यक्ष यहाँ तक पहुँच गया है ! गुरुजी बड़े प्रसन्न हुए, बोले : ''वत्स ! आयुष्मान् भव ! संतुष्टो भव ! आत्मरति और आत्मप्रीति वाला हो। वत्स ! तेरा मंगल हो।'' ये तो महाआशीर्वाद मिल गये ! वत्स ने दण्डवत् प्रणाम किया।

गुरुजी ने पूछा : ''अच्छा, क्या इच्छा है ?''

बोला : ''गुरुजी ! दानाध्यक्ष होकर देख लिया, धन की सुविधाओं में जीकर देख लिया लेकिन यहाँ जंगल-झाड़ियों में कंदमूल खाकर जो जीवन में भीतरी सुख मिला उसके आगे

महाराज ! वह तो मजदूरी थी। मुझे तो यहाँ रहने की आज्ञा दे दीजिये।''

गुरु ने कहा : ''वत्स ! रहो। आज से तुम इस आश्रम के निवृत्त मालिक हो क्योंकि तुझे उतना धन लुभा नहीं सका तो इधर की चीजें क्या लुभायेंगी ?''

वह वहाँ पेड़-पौधों को पानी पिलाता। सेवा तो थोड़ी-सी होती फिर ध्यान-भजन में लगता। गुरु ने देखा कि इसका जागतिक आकर्षण तो मिट गया है किंतु सोना बनानेवाले पारस का अभी आकर्षण है। इसलिए यह पूरे पारस को नहीं जान सकता है। पूरा पारस कौन है बताओ ?

पूरा प्रभु आराधिआ पूरा जा का नाउ ॥
नानक पूरा पाइआ पूरे के गुन गाउ ॥

(सुखमनी साहिब)

पूर्ण गुरु किरपा मिली, पूर्ण गुरु का ज्ञान।

अभी इसको पचेगा नहीं क्योंकि इसने पारस छिपा रखा है।

पारस को उसने जटाओं में सँभाल रखा था। मौका पाकर गुरु ने कहा : ''चलो, गंगा-किनारे रहेंगे।'' गंगा-किनारे गये।

गुरुजी बोले : ''बताओ भगतजी ! तुम्हारा भूतपूर्व जीवन कैसा था ?''

कैसे पाप किये और क्या-क्या किया, उसने अपनी कथा सुना दी।

गुरुजी बोले : ''अच्छा, ठीक परंतु तुम इतना दान-पुण्य करते थे, वे सब पैसे कहाँ से आते थे ?''

बोले : ''गुरुजी ! आपसे क्या छुपे, पारस मिल गया था ऐसे-ऐसे...''

अनजान होकर गुरुजी बोले : ''अच्छा तो वह पारस अब कहाँ है ?''

''गुरुजी ! आपसे क्या झूठ बोलूँ, मेरी जटाओं में मैंने छुपाकर रखा है। यह लो दिखाता हूँ।''

गुरुजी ने देखा। बोले : ''इसी पत्थर को पारस बोल रहे हो ?''

''हाँ, गुरुजी ! इससे सोना बनता है।''

'छी ! यह जरा-सा पत्थर !' कह के गुरुजी ने पारस गंगा में फेंक दिया।

ऐसे समर्थ योगी के आगे वह दानाध्यक्ष कुछ बोल तो नहीं सका पर मन में तो कुछ बोल ही दिया कि 'ये विरक्त बाबा लोग क्या जानें ? इन साधुओं को क्या पता ?' मानों हम ही जानते हैं, संत लोग कुछ जानते ही नहीं। कैसी है यह बुढ़िया - वासना ! इतने बढ़िया संत के लिए भी सोचा, 'ये बाबा लोग क्या जानें ?' बाबा अंतर्यामी थे, समझ गये कि 'हाय ! जिस बाबा को पाने के लिए इतना सारा कष्ट सहा, उस बाबा ने जरा-सा पत्थर फेंक दिया तो सोचता है, बाबा लोग क्या जानें ?

हाय-रे-हाय बुढ़िया ! तू अभी गयी नहीं ! दानाध्यक्ष के चित्त से बुढ़िया तू गयी नहीं अभी, फिर छुप गयी !'

सच्चे संत तो दयालु होते हैं, करुणासागर होते हैं। वे हमारे अवगुणों को मिटाते हैं, अपने कृपालु स्वभाव के अनुसार कृपा करते हैं।

बाबा ने कहा : ''अच्छा भगत ! तुम्हारा वह पत्थर का टुकड़ा, वह पारस तो फेंक दिया गंगा में। चलो, अब अपने शरीर को भी जरा गोता लगाकर फेंको थोड़ी देर।''

बोला : ''हाँ बाबा ! चलो।'' गोता मारा। बाबाजी दो-तीन गोते मारकर बाहर निकले और भगत को कहा : ''देख, जहाँ मैंने पारस फेंका ना, वहाँ से जितने पत्थर उठा सकता है उठा ले।''

उसने पत्थर उठाये, ले गया बाबा के पास।

बोले : ''इसमें तेरा वह पत्थर का टुकड़ा भी है कि नहीं, देख ले।''

''हाँ बाबा ! वह पारस है।''

''वह अकेला ही है कि दूसरे टुकड़े भी हैं ?''

''बाबाजी ! ये तो सब बड़े-बड़े, मेरे पारस

से भी बड़े-बड़े टुकड़े हैं !''

''ले-ले, तू ले जा ये सारे पारस ।''

दानाध्यक्ष ने सोचा कि 'जिन महापुरुष के संकल्प से इतने पारस हो सकते हैं, उन महापुरुष के पास कौन-सा पारस होगा ?'

दानाध्यक्ष बोला : ''बाबाजी ! वही पारस दीजिये, जिससे आपने इतने सारे पारस बनाये ।''

हमलोग संसार के इन छोटे-छोटे टुकड़ों - मेरा मकान, मेरी दुकान में ही उलझ जाते हैं किंतु हमारा आत्मदेव ऐसा है कि उसमें अनन्त-अनन्त सृष्टियाँ पैदा हुईं, विलय हो गयीं, फिर भी उसमें कोई घाटा नहीं पड़ा । ऐसा पारसों का पारस सबके साथ है लेकिन वह बुढ़िया (वासना) देखने नहीं देती ।

'जरा घूमूँ, जरा खाऊँ, जरा यह बनाऊँ, जरा वह बनाऊँ... आयकर भरने की तारीख है, जरा मुंबई जाकर आऊँ, जरा उधर जाकर आऊँ...' परंतु जिसकी सत्ता से जाया जाता है, उधर एक बार पूरा पहुँच जा यार ! फिर तू तो निहाल हो ही जायेगा, तेरे दर्शन करनेवाले भी निहाल होने लगेंगे, खुशहाल होने लगेंगे । अपने अंतरात्मा में गोता मार, डूब जा, खो जा परमात्म विश्रांति में... फिर देख, वह बुढ़िया कहाँ टिकती है ! □

संत नामदेवजी की वाणी

(मूल मराठी अभंग का भावानुवाद)

नाम ही रूप रूप ही नाम।
रूप से भिन्न नहीं है नाम ॥
अमूर्त प्रकटे धर रूप-नाम ।
स्थाप हृदयी करूँ नित प्रणाम ॥
नाम ते ऊँचा न मंत्र तमाम ।
जो बतलाये वे मूढ़ अज्ञान ॥
कहे नामदेव एक भगवन्नाम ।
प्रेमी भक्तों की जिगरी जान ॥

माया की पोल खोल

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

एक बार कुछ लोग हमको प्रवचन के लिए मावसरी (जि. बनासकांठा, गुज.) ले गये थे । छोटा-मोटा गाँव था, दोपहर के ढाई-तीन बजे थे। मैंने अँगोछा लिया, धोती डाली बगल में और उनसे कहा : ''मैं जरा नहा-धो के, ध्यान करके फिर आऊँगा।''

वे बोले : ''बापूजी ! पानी तैयार है, हम बाल्टी भर के रखते हैं ।''

मैंने कहा : ''नहीं, हम तो नदी में जा रहे हैं ।''

हमने ज्यों जाने को कहा तो वे आदमी हँस पड़े । मैंने पूछा : ''क्यों हँसते हो ?''

वे बोले : ''बापूजी ! वहाँ पानी नहीं है ।''

''इतना स्पष्ट दिख रहा है, चम-चम चमक रहा है, लहरा रहा है ।''

''बापूजी ! यह रेतीला प्रदेश है, यह तो मृग-मरीचिका है ।''

अब हमने उनकी बात मान ली और बुद्धि से समझ भी ली। हम नहाने जा रहे थे उस समय भी पानी दिख रहा था और जब उन्होंने समझाया तब भी मरुभूमि में पानी जैसा तो दिख रहा था लेकिन अब उसकी सत्यता बाधित हो गयी। ऐसे ही परमात्मा का साक्षात्कार होने से, असलियत का पता चलने से जगत की सत्यता बाधित हो जाती है । जैसे वहाँ मरुभूमि थी, सूरज की किरणें थीं, तपी हुई रेत और हवाएँ थीं इससे पानी जैसा दिख

रहा था, वास्तव में पानी नहीं था, ऐसे ही इस संसार में माया है, आपकी चेतना है और इंद्रियों का आकर्षण है इसीलिए संसार सच्चा दिख रहा है वास्तव में स्थाई कुछ भी नहीं है। परिवर्तन-ही-परिवर्तन है पर परिवर्तन जिसकी सत्ता से है, जिसको भास रहा है वह परमेश्वर सत्, चित्, आनन्द स्वरूप है और अभी इस समय तुम्हारा आत्मा होकर चम-चम चमक रहा है।

अगर मनुष्य को सींग हो सकते हैं तो यह संसार हो सकता है। अगर कछुए के बालों से रस्सी बनाकर हाथी बाँधा जा सकता है तो यह संसार हो सकता है। यह इतना ठोस जो लग रहा है, कुछ है ही नहीं फिर भी कितना सच्चा लग रहा है ! जैसे रात को तुम सपना देखते हो, उस समय वास्तव में न हवाई जहाज होते हैं, न यात्री होते हैं, न गंगा नदी होती है, न पंडा होता है अकेले तुम बिस्तर पर पड़े हो लेकिन दिखता है कि गंगा लहरियाँ लेती हुई भाग रही है, पंडा दक्षिणा के लिए इंतजार कर रहा है, ताँगेवाला नोट सँभाल रहा है और तुम सबको देख रहे हो, सोच रहे हो तथा ठंड से थर-थर काँप भी रहे हो क्योंकि गंगा नहाये हो। अगर सचमुच गंगा घर आ गयी होती तो तुम्हारा बिस्तर भीगना चाहिए था। फिल्म के पर्दे पर तुम देखते हो कि अरे ! आँधी-तूफान... फिर आग लगी। आग लगी पर पर्दा नहीं जला। थोड़ी देर बाद चौमासे का दृश्य आया। कावेरी नदी की बाढ़ दिखायी गयी। लोग बहे जा रहे हैं। अरे रे रे रे ! पानी... बाढ़ के पानी से सताये गये लोग... फिर भी पर्दे में जरा भी गीलापन नहीं, दिखता भर है, ऐसे ही जन्म-मृत्यु, पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक तुम्हारे अंतःकरण में, शरीर में दिखता है फिर भी जिसकी सत्ता से दिखता है उस परमात्मा में अर्थात् तुममें कुछ भी नहीं। जैसे पर्दे पर दिखती हुई आग पर्दे को नहीं जलाती, दिखती हुई बाढ़ पर्दे को नहीं भिगोती, ऐसे ही तुम्हारे जीवन में उतार-चढ़ाव, पाप-पुण्य, जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि सब दिखते हैं किंतु वास्तव में तुमको कुछ नहीं लगता, तुम वह चीज हो। उस चीज का साक्षात्कार जब हो जाय तब तुम सौभाग्यशाली हो गये, निर्भार हो गये, निर्दुःख हो गये। फिर तुम्हारे लिए भजन करने योग्य कोई भगवान, कोई देवी या देवता कुछ बचेगा नहीं। तुम्हारा सब कुछ करना-कराना भजन हो जायेगा। लोगों को दिखेगा तुम बड़े-बड़े काम कर रहे हो परंतु तुम्हारे सहज स्वभाव में सब होने लगेगा।

जैसे सूर्य की हाजिरी से सब कुछ होने लगता है - जो होना चाहिए वह होता है और जो नहीं होना चाहिए वह रुकता है। सूर्य के प्रकट होने से ऑक्सीजन बढ़नी चाहिए, पक्षियों को किलोल करना चाहिए, फूल खिलने चाहिए, सुगंधियाँ फैलनी चाहिए, मनुष्य में उत्साह और आह्लाद आना चाहिए तो आता है। अंधकार, भूत-प्रेत भाग जाने चाहिए, डाकिनी-शाकिनी का भय छू हो जाना चाहिए, हानिकारक जीवाणु नष्ट हो जाने चाहिए तो अपने-आप होता है। सूर्य को कोई चिंता नहीं, कोई बोझ नहीं, काम करने की कोई मेहनत भी नहीं, काम करने का अहंकार भी नहीं। उनकी हाजिरीमात्र से सब हो जाता है। ऐसे ही तुम्हारे इस ज्ञाननिष्ठा में स्थित होनेमात्र से तुम्हारे तन-मन का, संबंधों का सब ठीक होता जायेगा। फिर पिता की मुक्ति के लिए, माता के कल्याण के लिए तुमको कुछ विशेष करना नहीं पड़ेगा। लोगों के कल्याण के लिए तुमको विशेष बोझा जैसा नहीं लगेगा। तुम्हारे द्वारा वही होगा जिससे सबका कल्याण होगा। जो सच्चिदानंद स्वभाव को पा लेता है वह **सर्वभूतहिते रतः** अर्थात् सर्व प्राणियों के हित में रत रहने के स्वभाववाला हो जाता है। वास्तविक हित तभी होता है। ❑

अब समय नहीं है सोने का

– नेताजी सुभाषचंद्र बोस

विद्यार्थी का प्राथमिक कर्तव्य है चरित्र-निर्माण। हम किसीके चरित्र को उसके कार्यों द्वारा आँक सकते हैं। कार्य ही चरित्र को व्यक्त करता है। किताबी जानकारों से मुझे घोर अरुचि है। मैं चाहता हूँ चरित्र, विवेक, कर्म। चरित्र के अंतर्गत सब कुछ आ जाता है - भगवान की भक्ति, देशभक्ति, भगवान को पाने की उत्कट आकांक्षा।

मैंने यह अनुभव कर लिया है कि अध्ययन ही विद्यार्थी के लिए अन्तिम लक्ष्य नहीं है। विद्यार्थियों का प्रायः यह विचार होता है कि अगर उन पर विश्वविद्यालय का ठप्पा लग गया तो उन्होंने जीवन का चरम लक्ष्य पा लिया लेकिन अगर किसीको ऐसा ठप्पा लगने के बाद भी वास्तविक ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ तो ? **मुझे कहने दीजिये कि मुझे ऐसी शिक्षा से घृणा है। क्या इससे कहीं अधिक अच्छा यह नहीं है कि हम अशिक्षित रह जायें ?**

शिक्षा के उद्देश्य हैं बुद्धि को कुशाग्र बनाना और विवेकशक्ति को विकसित करना। यदि ये दोनों उद्देश्य पूर्ण हो जाते हैं तो यह मानना चाहिए कि शिक्षा का लक्ष्य पूरा हो गया है। यदि कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति चरित्रवान नहीं है तो क्या मैं उसे पण्डित कहूँगा ? कभी नहीं। और **यदि एक अनपढ़ व्यक्ति ईमानदारी से काम करता है, ईश्वर में विश्वास रखता है व उससे प्रेम करता है तो मैं उसे महापण्डित मानने को तैयार हूँ।** कोई व्यक्ति कुछ बातें रट-रटकर ही विद्वान नहीं बन जाता। मुझे केवल श्रद्धा चाहिए। तर्क से अतीत श्रद्धा, यह श्रद्धा कि भगवान का अस्तित्व है। इसके अतिरिक्त मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। महान ऋषियों ने कहा है कि श्रद्धा से ही ज्ञानप्राप्ति का मार्ग खुलता है। श्रद्धा से मुझमें भगवद्भक्ति जाग्रत होगी और भक्ति से ज्ञान मुझे स्वतः प्राप्त होगा।

भारतभूमि भगवान को बहुत प्यारी है। प्रत्येक युग में उन्होंने इस महान भूमि पर त्राता के रूप में जन्म लिया है, जिससे जन-जन को प्रकाश मिल सके, धरती पाप के बोझ से मुक्त हो और प्रत्येक भारतीय के हृदय में सत्य एवं धर्म प्रतिष्ठित हो सके। भगवान अनेक देशों में मनुष्य के रूप में अवतरित हुए हैं लेकिन किसी अन्य देश में उन्होंने इतनी बार अवतार नहीं लिया जितनी बार भारत में लिया है। इसलिए मैं कहता हूँ कि हमारी भारतमाता भगवान की प्रिय भूमि है।

मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जो आधुनिकता के जोश में अपने अतीत के गौरव को भूल जाते हैं। हमें भूतकाल को अपना आधार बनाना है। भारत की अपनी संस्कृति है, जिसे उसे अपनी सुनिश्चित धाराओं में विकसित करते जाना है। हमारे पास विश्व को देने के लिए दर्शन, साहित्य, कला व विज्ञान में बहुत कुछ नया है और उसकी ओर सारा संसार टकटकी लगाये हुए है।

अब समय नहीं है और सोने का। हमको अपनी जड़ता से जागना ही होगा, आलस्य त्यागना ही होगा और कर्म में जुट जाना होगा।

(संकलित) ☐

बृहस्पते वाजं जय।
हे मानव ! तू जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त कर। (यजुर्वेद :९.११)

राग-द्वेष दोनों खोइये, पाइये पद निर्वाण

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

आपने मन से किसीके लिए बुरा सोचा है या आपका किसीसे संघर्ष हो गया, बोल-चाल हो गयी है तो सूर्यास्त से पहले उससे मिल लो, बीच में रात न पड़े; उससे समझौता कर लो, क्षमा माँग लो। दिल में किसीके लिए वैर, नफरत नहीं रखो।

समझो, मैंने किसी आदमी से मारपीट कर ली और उसने जाकर मुकदमा दायर कर दिया। अब हमारे ऊपर सम्मन्स (न्यायालय से बुलावा) आया। जिस न्यायाधीश ने सम्मन्स निकाला है वह मेरा परिचित है। मैं उसको बोलता हूँ कि मेरा केस निकाल दो, वह नहीं निकाल सकता है। वह मुझे बोलेगा : 'ऐसा करो कि जिससे मारपीट की है उससे आप समझौता कर लो, फिर मैं समझौते की अर्जी फाइल कर दूँगा लेकिन ऐसे तो मैं आपको नहीं छोड़ सकता हूँ, मेरा फर्ज है।'

उस आदमी से मैं समझौता करता हूँ तो धक्के खाना, कर्मबंधन कट जाते हैं, सीधा गणित है ! ऐसे ही हमने साधारण-से-साधारण व्यवहार में एक-दूसरे से जो राग-द्वेष किया है या एक-दूसरे का जो बिगाड़ा है, एक-दूसरे से माफी माँगकर हम अपने उस कर्म को यहाँ समाप्त नहीं करते तो यमराज हमको छोड़ नहीं सकते। हम अपने व्यवहार से एक-दूसरे से जो भिड़ गये हैं या एक-दूसरे के प्रति हमने राग-द्वेष करके अपने अंतःकरण में मैल बाँध दी है, केस बना लिया है तो मरने के बाद भी हमको एक-दूसरे के आगे चुकाना पड़ेगा। हमने जिसको दुःख दिया है या जो हम पर नाराज हैं वे हमको क्षमा कर दें, तभी कर्मबंधन कटेगा। अगर उस आदमी के साथ हमारा राग-द्वेष बना रहा तो फिर कर्म के नियमानुसार हमको न्यायालयों में जाना ही पड़ता है और तब तक जाना रहेगा जब तक दोनों पक्ष समझौता नहीं करते।

चित्त में राग-द्वेष न रहे। राग से चित्त मलीन होता है और द्वेष से भी मलीन होता है। राग-द्वेष की गाँठ मत बाँधो, इससे हृदय जल्दी पवित्र होगा और परमात्मा का रास्ता साफ सूझेगा। □

मनःशरीर और प्राणशरीर को स्वस्थ रखने का उपाय

- पूज्य बापूजी

पूर्ण आरोग्यता तो मनःशरीर और प्राण शरीर दोनों को स्वस्थ रखने से ही मिलती है। इन दोनों शरीरों को स्वस्थ करने के लिए तीर्थस्थल में नहाते समय नाभि तक जल में खड़े हो जायें। अंजली में जल लेकर उसे निहारते हुए १०० बार 'ॐ' का जप करें, फिर वह जल पी लें। तीर्थस्थल में नहीं हैं तो घर में ही एक कटोरी में जल लेकर सुबह स्नान के पश्चात् यह प्रयोग करें। चाँदी अथवा सोने की कटोरी हो तो अति उत्तम, नहीं तो ताँबे आदि की भी चलेगी। पानी को निहारते हुए 'ॐ' का जप करें। नेत्रों के द्वारा मंत्रशक्ति की तरंगें पानी में जायेंगी और 'ॐ' के जप से मनःशक्ति तथा प्राणशक्ति का विकास होगा।

प्रार्थना का सर्वोत्तम तरीका

- पूज्य बापूजी

प्रार्थी अपनी योग्यताओं के अन्दर कोई कमी या किसी प्राप्ति में अपने सामर्थ्य की कमी जब हृदयपूर्वक मानता है और देनेवाले की महत्ता जानता है, तब सच्चाई से प्रार्थना निकलती है। फिर प्रार्थना चाहे रामजी, कृष्णजी, शिवजी, गुरुजी अथवा अन्तर्यामी परमात्मा के किसी भी रूप की हो।

प्रार्थना करते-करते तुम शांत हो जाओ। पुनः सच्चे हृदय से, आर्त्त भाव से प्रार्थना करो और होगा कि नहीं ऐसा संदेह न करो। प्रार्थना करो कि 'जब मैं तुम्हारा हूँ, तुम्हारी शरण हूँ तो मेरी मुसीबत अब मेरी नहीं है, मेरी चिन्ता अब मेरी नहीं है। मेरी बेटी की चिन्ता मेरी चिन्ता नहीं है, बेटी तेरी है। मैं अब चिन्ता नहीं करूँगा चिन्तन करूँगा, पुरुषार्थ करूँगा। महाराज ! तुम मेरे हो, मैं जैसा-तैसा हूँ तुम्हारा हूँ।

दीन दयाल को बेनती सुनहुँ गरीबनिवाज।
जो हम पूत कपूत हैं तो हे पिता तेरी लाज॥

हे परम पिता ! तुम मेरी लाज रखो।'

मुझे ऐसी खतरनाक बीमारी हो गयी थी कि आँखें तिरछी हो गयीं, यकृत, गुर्दे, पाचनतंत्र सब जवाब दे बैठे ! ऐसी गम्भीर हालत कि दुश्मन भी देखे तो उसका कलेजा फट जाय। मैं कमरे में बंद हो गया और उस सर्वव्यापक से कहा : ''अब तुमको रखना है तो क्या इस हालत में रखोगे ? अब तुम ही ठीक कर सकते हो।

नारायणो वैद्यो जाह्नवी औषधिः।

गंगाजल औषधि और वैद्य तुम। बोलो, अब तुम्हारी क्या मर्जी है ? जैसी तुम्हारी मर्जी।

बोले : 'तो हो गया, मैं कर लेता हूँ।' महाराज ! आँखें तिरछी-टेढ़ी हो गयी थीं, वे भी ठीक हो गयीं। वरना इस उम्र में तिरछी आँखें ठीक होना आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के हिसाब से संभव ही नहीं है और बीमारी के पहले जैसा शरीर था अब उससे कई गुना बढ़िया हो गया। अब और जवानी चमक रही है। वह कैसा प्रभु है ! प्रार्थना का फल कैसा है ! केवल शरीर नहीं, मन व बुद्धि भी ठीक होने लगते हैं और जिनसे मिलो वे बेठीक भी ठीक होने लगते हैं। उस परमात्मा की यह प्रार्थना कैसी है !

तुम कभी अपनेको अनाथ न समझो, जगत का नाथ तुम्हारे साथ है। तुम कभी अपनेको विधवा न मानो देवियो ! माताओ ! जगत का पति तुम्हारे साथ है।

कुछ लोग कहते रहते हैं : 'मेरे पास कुछ भी नहीं है... कर्जा चढ़ गया है...।' कर्जा चढ़ गया है तो उसे उतारने का प्रयत्न करो, अपने भाग्य को कोसो मत। 'मेरे पास कुछ भी नहीं है-कुछ भी नहीं है' कहते हो तो पाँच लाख रुपये ले लो और दे दो अपनी दोनों आँखें। तुम दे सकते हो क्या ? नहीं... १० लाख रुपये ले लो और दोनों आँख और कान दे दो। नहीं दे सकते। भगवान ने इतनी पूँजीवाला शरीर दिया है व उससे बढ़िया मन दिया है, बुद्धि दी है और जगन्नियंता तो तेरा है ही न ! यह क्यों भूल जाता है ?

'मरने के बाद भी मेरा साथ नहीं छोड़नेवाला तू मेरा है न !...'- आर्त्त भाव से कहो। प्रार्थना ऐसी फलेगी कि हद हो गयी ! रामसुखदासजी महाराज ने भगवत्प्रार्थना का बड़ा फायदा उठाया, गजब का फायदा उठाया ! एक बार जब मुलाकात

हुई तब उन्होंने बताया कि 'हमने सत्संग में सुना कि भगवान की शरण ईमानदारी से हो जाओ तो सब कुछ ठीक हो जायेगा । तुमको भगवान के लिए छटपटाहट हो जाय तो १२ महीने में ईश्वर मिल सकते हैं, ६ महीने में मिल सकते हैं, ६ दिन में मिल सकते हैं। अरे ! छटपटाहट पूरी हो और भगवान की शरण पूरे हो जाओ तो आपका सारा कार्य, योग और क्षेम भगवान वहन करेंगे।' उनको सत्संग से यह बात मिल गयी । आये अपने कमरे में और हृदयपूर्वक कहा कि 'मैं छोटा हूँ, बड़ा हूँ, क्या हूँ, कैसा हूँ - जैसा-तैसा हूँ लेकिन आज से तुम्हारा हूँ नाथ ! हे नाथ ! हे नाथ !! हे नाथ !!!...'

पड़ गये धरती पर दंडवत् प्रणाम करके। पड़े रहे, पड़े रहे कुछ देर । इन्द्रियाँ मन में गयीं, मन बुद्धि में गया, बुद्धि जीवत्व में गयी, जीवत्व ईश्वर में अनजाने में खो गया। महाराज ! वह साधारण दिखनेवाला साधक संत रामसुखदासजी महाराज होकर चम-चम चमके, लाखों-करोड़ों लोग उनको जानते हैं । उनका साहित्य कहाँ तक पहुँचेगा, मैं बयान नहीं कर सकता । उनको फिर अन्दर से प्रेरणा हुई कि सत्संग करो । वे बोले : 'महाराज ! मैं तो कुछ जानता नहीं, इतना पढ़ा नहीं और मैं तो तर्क-वितर्क करनेवाला ।' अंदर से पुनः प्रेरणा हुई - सत्संग करो । सत्संग करना शुरू किया ।

तुम ऐसे ही प्रार्थना करो कि जिससे प्रार्थना करते हो न बस, उस तक पहुँच जाओ। एक दिन में नहीं तो १० दिन में, २० दिन में । बोले : 'महाराज ! प्रार्थना होती नहीं, रोना आता नहीं ।' तो तू झूठ-मूठ में रो और झूठ-मूठ में भी तुम रोते हो उसके लिए तो वह समझेगा । देर-सवेर सच्चा रुदन आयेगा और वह तुम्हें अवश्य ही पकड़ लेगा ।

दुःख का रुदन-पीड़ादायी रुदन और प्रार्थना के रुदन में बहुत फर्क है । प्रार्थना का रुदन तो बड़ी कृपा से होता है । उसने जब हाथ पकड़ लिया हो, तब प्रार्थना का रुदन आता है। निश्चिन्त हो जाओ । प्रार्थना का रुदन आ गया तो समझ लो, अब हम अनाथ नहीं हैं, नाथ ने हमको सँभाल लिया है ।

ईश्वर का स्वभाव है कि वे प्राणिमात्र का भला चाहते हैं, करते हैं लेकिन अगर सबका परम भला करने लग जायें तो अव्यवस्था हो जायेगी। जो प्रार्थना करता है, जो उनकी शरण आता है, उसीको वे विशेषरूप से उठाते हैं । सामान्य रूप से सब पर कृपा है, विशेषरूप से नहीं। जैसे सूर्य का प्रकाश सामान्य रूप से सर्वत्र समान है किंतु बिल्लौरी काँच हो तो विशेष प्रभाव लाता है, ऐसे ही जो ईश्वर के नाम का जप करते हैं, ईश्वर को अपना मानते हैं, अपनेको ईश्वर का मानते हैं तथा यह जानते हैं कि 'सुख और दुःख जिसकी सत्ता से दिखते हैं, हम उसके हैं ।' बस, उनकी प्रार्थना परम प्रार्थना हो जाती है। मैं उसीका फायदा लेता हूँ ।

रात को सोते समय प्रार्थना करते हुए सोओ। श्वास अंदर जाय 'ॐ', बाहर आये तो 'एक' अथवा अंदर जाय तो 'राम', बाहर आये तो 'एक'... इस प्रकार श्वासोच्छ्वास की गिनती करते हुए उससे यह प्रार्थना करना : 'मैं तेरा, तू मेरा। अच्छा काम हुआ तो तेरी कृपा से और गड़बड़ी हुई तो मेरे अहंकार तथा वासनाओं के कारण । महाराज ! मुझे अच्छे संस्कार दे दो । जैसा-तैसा मैं तेरा हूँ।' सफलता मिलेगी कि नहीं, ऐसी चिंता नहीं करना । भैया ! लाला-लालियाँ, देवियाँ !! अरे, सफलता तो क्या, तुम ऐसे हो जाओ कि सफलता देनेवाला तुम्हारे पीछे-पीछे घूमे, तुम्हारे अन्दर ऐसी शक्ति है ।

कबीरा मन निर्मल भयो, जैसे गंगा नीर ।
पीछे-पीछे हरि फिरे, कहत कबीर-कबीर ॥ □

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

भगवान वेदव्यासजी ने विश्व के सर्वप्रथम आर्ष ग्रंथ 'ब्रह्मसूत्र' में लिखा है :

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा । (१.१.१)

हे मानव ! तुझे कुछ जानना है तो उस एक को जान जिससे सब जाना जाता है । तुझे कुछ पाना है तो उस एक को पा जिससे सब पाया जाता है । तुझे मिलना है तो उस एक से मिल जिससे तू सबसे एक ही साथ मिल पाये । अपने जीवन की डायरी में लिखो 'ब्रह्मजिज्ञासा' ।

ब्रह्मजिज्ञासा विवेक के विकास से उपलब्ध होती है । श्रद्धा की जगह पर अश्रद्धा न आने पाये, प्रयत्न की जगह पर प्रमाद न आने पाये, सतर्कता, स्फूर्ति की जगह पर आलस्य न घुस जाय, कर्म की जगह पर अकर्मण्यता न आ जाय, कर्तव्य-सन्मुखता की जगह पर कर्तव्य-विमुखता न आ जाय - इस बात का विवेक करना चाहिए। यह विवेक होगा तो परमात्मा से मिलने में देर नहीं होगी ।

वास्तविक कर्तव्य है अपने ब्रह्मस्वरूप को जानना, मरणधर्मा शरीर में अमरत्व को जानना, मरनेवाले शरीर में अपने अमर आत्मा को जानना । पिया (परमात्मा) से मिलने में देर तब तक लगती है, जब तक हमसे श्रद्धा की जगह पर अश्रद्धा, प्रयत्न की जगह पर प्रमाद, तत्परता की जगह पर आलस्य, कर्म की जगह पर अकर्मण्यता, कर्तव्य-सन्मुखता की जगह पर कर्तव्य-विमुखता होती है । विवेक की कमी से अनित्य में उलझ गये हैं और नित्य वस्तु को छोड़कर बिछुड़नेवाली परिस्थितियों में परेशान हो गये । मिलने में देर लगने का कारण है कि उसका महत्त्व नहीं जानते, तीव्र जिज्ञासा, तड़प नहीं है, अनित्य का आकर्षण है ।

मनुष्यमात्र मुक्ति चाहता है । गरीबी, बीमारी, दुःख, अपमान, पराधीनता से मुक्ति चाहता है । मुक्ति तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है और तुम्हारी जन्मसिद्ध चेष्टा है । छोटा-सा जीव-जंतु भी बंधन नहीं चाहता है तो मनुष्य बंधन कैसे चाहेगा ? गलती यह होती है कि हम विवेक का आश्रय नहीं लेते । परमात्मा से मिलने में देर होने का कारण है कि हम विवेक का आदर नहीं करते ।

गुण प्राकृतिक हैं, हम अपने में मान लेते हैं यह अविवेक है । अपने गुण दिखते हैं, दूसरे के दोष दिखते हैं- यह गलती है तथा विवेक की कमी है- ये दो बड़ी गलतियाँ हमारे सारे दुःखों का मूल बन जाती हैं ।

हमारे जीवन में यह सद्‌गुण आ जाय कि दूसरे में क्या दोष है यह न देखें बल्कि 'दूसरे के दोष कैसे निकलें ? दूसरों की उन्नति में हमारा क्या कर्तव्य है ?' इसका विचार करें और अपने कर्तव्य के प्रति हम सावधान हो जायें तो हमारा विवेक जगेगा, हमारी निर्दोषता सुरक्षित रहेगी ।

जिस आदमी के जीवन में विवेक होता है वह छोटी-छोटी चीजों में अपना विवेक बेचता नहीं, बड़ी-बड़ी चीजों में भी विवेक नहीं बेचता, तब बड़ी-में-बड़ी पदवी और बड़े-में-बड़ा जो परमात्मा है उसकी माँग व जिज्ञासा जगती है । वह उसको देर-सवेर मिल ही जाता है । इसलिए अपने विवेक का आदर करना चाहिए ।

बिनु सतसंग बिबेक न होई ।

विवेक सत्संग से होता है । नित्य क्या, अनित्य क्या ? शाश्वत क्या, नश्वर क्या ? वास्तविक 'मैं' क्या, माना हुआ 'मैं' क्या ? आत्मा अविनाशी है, जगत परिवर्तनशील-विनाशी है । मरनेवाले शरीर को 'मैं' मान रहे हैं, अमर आत्मा का पता नहीं । सत्संग से यह अविवेक धीरे-धीरे क्षीण होता है ।

सत्संग से जिनका विवेक नहीं जगा वे बरबादी के जीवन में जाते हैं, शुरुआत में उनको मजा आता है- डिस्को में मजा आ जाता है, 'रॉक एंड रोल' में मजा आ जाता है, परस्त्रीगमन आदि में मजा आ जाता है लेकिन अंत में अनंत-अनंत जन्मों तक राक्षसी योनि, प्रेत योनि, पेड़-पौधों और भैंसों की योनियों में दुःख भोगना पड़ता है । एक अल्प मनुष्य-जन्म, उसमें मनुष्य अगर विवेक का सहारा ले ले तो वह अनंत ब्रह्माण्डनायक ईश्वर से मिल सकता है और अविवेक की शरण जाता है तो अनेक जन्मों में माता के गर्भ में पीड़ा सहता-सहता, दुःख सहता-सहता अपने लिए, देश और विश्व के लिए अभिशाप बन जाता है । जो विवेक का सहारा लेता है, ब्रह्मजिज्ञासा का सहारा लेता है वह अपने लिए, कुटुम्ब, देश और विश्व के लिए; अरे ! विश्वेश्वर के लिए भी उपयोगी हो जाता है ।

तुम कृपा करके अपने प्रति न्याय और दूसरों के प्रति उदारता का व्यवहार करो । तुम अपनी गलती को निकालने के लिए जब तक तत्पर नहीं होगे, तब तक उन्नति नहीं होगी । ऐसा मत सोचना कि कोई मजहब तुम्हारी उन्नति करेगा, कोई देवी-देवता, संत तुम्हारी उन्नति करेंगे । ना, देवी-देवता, संत तुम्हारी उन्नति तब करेंगे, जब तुम अपने विवेक का आदर करोगे, उनकी सलाह को अपने जीवन में उतारोगे । तुम्हारे पास विवेक होगा तो उनका परामर्श तुम अपना बना लोगे । संत-महात्मा, मजहब तुमको परामर्श दे सकते हैं, मोक्ष नहीं दे सकते । मोक्ष तो वे दें लेकिन उसमें तुम्हारे विवेक की जरूरत है । विवेक का आदर करके जीवन जीने की जवाबदारी तुम्हारी है । ऐसी जवाबदारी मान लोगे तो जीवनदाता तुम्हारा आत्मा प्रकट हो जायेगा ।

इसलिए हे साधक ! तू ब्रह्मजिज्ञासा कर, आत्मविकास कर । तेरा 'मैं' केवल शरीर में नहीं, केवल परिवार में नहीं, केवल गाँव, केवल राज्य में नहीं, केवल राष्ट्र या विश्व में नहीं बल्कि जब तक तेरा 'मैं' अपने विश्वेश्वर में पूर्ण रूप से स्थापित नहीं होता है, तब तक तू अपनी जिज्ञासा और आध्यात्मिक यात्रा चालू रख, जरूर पहुँचेगा, अवश्य पहुँचेगा । □

पहले कौन ?

- पूज्य बापूजी

सुबह नींद में से उठते हैं तो निगाह पड़ती है बेटे-बेटी पर, पेड़-पौधे पर अथवा किसी दृश्य पर । उस समय सोचो कि सुबह-सुबह उठते समय पहले कौन है ? पहले चित्र है, बेटा है, बेटी है ? नहीं, पहले आँख है । उसके पहले उसको सत्ता देनेवाली मनःवृत्ति और उसके पहले बुद्धि है, उसके पहले 'मैं' है । उस 'मैं' को ठीक-से नहीं समझते हैं । उस 'मैं' को देह में आबद्ध कर देते हैं । वह 'मैं' अगर क्रियाजन्य सुख में उलझ गया तो असली 'मैं' का पता नहीं चलता ।

जो बिछड़े हैं प्यारे से,
दर बदर भटकते फिरते हैं ।
हमारा यार है हममें,
हमन को बेकरारी क्या ?

युवानो ! सावधान...

(मातृ-पितृ पूजन दिवस : १४ फरवरी)

भारतभूमि ऋषि-मुनियों, अवतारों की भूमि है। यहाँ पहले लोग आपस में मिलते तो 'राम-राम' कहकर एक-दूसरे का अभिवादन करते थे। दो बार ही 'राम' क्यों कहते थे ? एक, तीन, चार या अनेक बार 'राम' क्यों नहीं कहते थे ? दो बार 'राम' कहने के पीछे कितना सुंदर अर्थ छुपा है कि सामनेवाले व्यक्ति तथा मुझमें, दोनों में उसी राम-परमात्मा-ईश्वर की चेतना है, उसे प्रणाम हो ! ऐसी दिव्य भावना को 'प्रेम' कहते हैं। निर्दोष, निष्कपट, निःस्वार्थ, निर्वासनिक स्नेह को 'प्रेम' कहते हैं । इस प्रकार एक-दूसरे से मिलने पर भी ईश्वर की याद ताजा हो जाती थी पर आज ऐसी पवित्र भावना तो दूर की बात है, पतन करनेवाले 'आकर्षण' को ही 'प्रेम' माना जाने लगा है। १४ फरवरी को 'वेलेन्टाइन डे' मनाया जाता है। इस दिन पश्चिमी देशों में युवक-युवतियाँ एक-दूसरे को ग्रीटिंग कार्ड्स, चॉकलेट्स और गुलाब के फूल भेंट करते हैं।

पश्चिमी देशों के वासनामय प्रेम का घृणित रूप अभी अपने देश में भी दिखने लगा है। विशेषतः कॉलेजों में लाल गुलाब हाथ में लिये कइयों को देखा जा सकता है ।

इस दिन के लिए बाजार में २० रु. से लेकर २०० रु. तक के तरह-तरह के ग्रीटिंग कार्ड्स पाये जाते हैं। विशेष प्रकार के महँगे चॉकलेट्स भी मिलते हैं । कहाँ तो **'परस्परं भावयन्तु ।** हम एक-दूसरे को उन्नत करें। **तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।** मेरा मन सदैव शुभ विचार ही किया करे।' - इस प्रकार की दिव्य भावना को जगानेवाले हमारे रक्षाबंधन, भाईदूज जैसे पर्व और कहाँ यह वासना, अभद्रता को बढ़ावा देनेवाला 'वेलेन्टाइन डे' !

अभी तो विज्ञान भी सिद्ध कर रहा है कि सवासनिक प्रेम में पड़े हुए व्यक्ति की बुद्धि कुंठित हो जाती है। यूनिवर्सिटी कॉलेज, लंदन के वैज्ञानिक एन्ड्रियास बौरटेल्स ११ देशों में विविध जातियों के लोगों पर प्रयोग करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि एकाग्रता और यादशक्ति से संबंधित ज्ञानतंतुओं पर प्रेम का गहरा असर होता है। अपने प्रेमी-प्रेमिका का फोटो देखने के बाद उस व्यक्ति के मस्तिष्क की संवेदना को 'मेग्नेटिक रेसोनेन्स इमेजिंग' (MRI) के द्वारा मापा गया। फोटो देखने पर मस्तिष्क के चार छोटे विभागों में रक्त का प्रवाह ज्यादा देखने को मिला, जिसके परिणामस्वरूप उस व्यक्ति की यादशक्ति तथा एकाग्रता घट जाती है और भय व अवसाद (डिप्रेशन) बढ़ जाता है ।

'वेलेन्टाइन डे' के नाम पर भले ही युवक-युवतियाँ समझें कि वे मौज मना रहे हैं पर वे जानते ही नहीं कि अपने-आपका कितना नुकसान कर रहे हैं । कितना वीर्य का नाश, जीवनीशक्ति का नाश कर रहे हैं । इसे 'युवाधन विनाश डे' के नाम से संबोधित कर इसके भयंकर परिणामों से अवगत कराते हुए परम पूज्य बापूजी कहते हैं :

''रोम के राजा क्लाउडियस ब्रह्मचर्य की महिमा से परिचित रहे होंगे, इसलिए उन्होंने अपने सैनिकों को शादी करने के लिए मना किया था

ताकि वे शारीरिक बल और मानसिक दक्षता से युद्ध में विजय प्राप्त कर सकें। सैनिकों को शादी करने के लिए जबरदस्ती मना किया गया था, इसलिए पादरी वेलेन्टाइन, जो स्वयं पादरी होने के कारण ब्रह्मचर्य के विरोधी नहीं हो सकते थे, ने गुप्त ढंग से उनकी शादियाँ करायीं। राजा ने उनको दोषी घोषित किया और उन्हें फाँसी दे दी गयी। सन् ४९६ से पोप गेलेसियस ने उनकी याद में 'वेलेन्टाइन डे' मनाना शुरू किया।

'वेलेन्टाइन डे' मनानेवाले लोग पादरी वेलेन्टाइन का ही अपमान करते हैं क्योंकि वे शादी के पहले ही अपने प्रेमास्पद को वेलेन्टाइन कार्ड भेजकर उनसे प्रणय-संबंध स्थापित करने का प्रयास करते हैं। यदि संत वेलेन्टाइन इससे सहमत होते तो वे शादियाँ कराते ही नहीं।

संयम और सच्चा विकास प्रेम-दिवस में लाना चाहिए। युवक-युवती मिलेंगे तो विनाश-दिवस बनेगा। इस दिन बच्चे-बच्चियाँ माता-पिता का आदर-पूजन करें और उनके सिर पर पुष्प रखें, प्रणाम करें तथा माता-पिता अपनी संतान को प्रेम करें। संतान अपने माता-पिता के गले लगे। इंससे वास्तविक प्रेम का विकास होगा। बेटे-बेटियाँ माता-पिता में ईश्वरीय अंश देखें और माता-पिता बच्चों में ईश्वरीय अंश जगायें। ॐ... ॐ... अमर आत्मा का सामर्थ्य जगायें। जैसे गणपति ने शिव-पार्वती का पूजन किया और शिव-पार्वती ने **'ॐ सिद्धो भव, ॐ प्रसिद्धो भव, ॐ सर्वविघ्नहर्ता भव।'**- ऐसा आशीर्वाद दिया।'' □

सत्संग से मनुष्य को साधना प्राप्त होती है, चाहे वह शांति के रूप में हो चाहे मुक्ति के रूप में, चाहे सेवा के रूप में हो, प्रेम के रूप में हो चाहे त्याग के रूप में हो। ('जीवन रसायन' पुस्तक से)

सार बातें

○ पूर्ण सुखी, पूर्ण स्वतंत्र, पूर्ण आनंदित तो वही हो सकता है जो पुरानी जीवभाव की आदतों को मिटा दे, संकल्पों-विकल्पों को मिटा दे।

○ आत्मचिंतन द्वारा ज्यों-ज्यों बुद्धि सूक्ष्म होती जाती है, त्यों-त्यों मनुष्य की समझ बढ़ती जाती है और उसे परमेश्वर अधिक अपने लगने लगते हैं।

○ विवेक की कमी के कारण ही मानव संसार के नश्वर संबंधों में अपने-आपको डुबा देता है, जिससे अंत में रोना ही पड़ता है किंतु यदि मनुष्य एक बार भी परमेश्वर के सुख का स्वाद चख ले तो फिर वह परमेश्वर के बिना, परमेश्वरीय सुख के बिना रह नहीं पायेगा। भगवान शिव ने कहा है :

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना।
ताहि भजनु तजि भाव न आना॥

○ अपेक्षाएँ जितनी अधिक होती हैं, मनुष्य अंदर से उतना ही अधिक परेशान होता है। जितनी अपेक्षाएँ कम होती हैं, मनुष्य का चित्त उतना ही शांत होता है, निर्मल होता है। अपेक्षाओं के त्याग से ही सुंदर जीवन का निर्माण एवं सुंदर बुद्धि का प्राकट्य होता है, आंतरिक सुंदरता प्रकट होती है।

○ भीतर से भयभीत रहने पर बाहर सुरक्षाकर्मी एवं अंगरक्षक रखने पर भी अंदर भय बना ही रहता है। अगर हम भीतर से निर्भय रहें तो बाहर की कोई भी परिस्थिति हमें डरा नहीं सकती।

○ शरीर को साफ-सुथरा व पवित्र रखें, जिस किसीको छुएँ नहीं तो फिर और शरीरों से, कामविकार आदि से घृणा होने लगेगी, कामविकार से बचने में मदद मिलेगी। □

त्रिभुवन में बुद्धिमान कौन ?

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

भगवान रामचन्द्रजी ने अपने गुरुदेव महर्षि वसिष्ठजी से पूछा : ''हे मुनिवर ! पाताल, भूतल और स्वर्ग में बुद्धिमान कौन है ?''

श्री वसिष्ठजी बोले : ''हे रामजी ! सारा जगत इन्द्रियों के विषयों की तृष्णा से जलता है। इष्ट की प्राप्ति में हर्ष और अनिष्ट की प्राप्ति में शोक करता रहता है। ऐसा कोई विरला ही है जो जगत में सूर्य की नाईं प्रकाशमान होता है, नहीं तो सब तृण की तरह भोगरूपी वायु में भटकते फिरते हैं।''

जैसे तिनका, पीपल का पत्ता हवा में फड़फड़ाता रहता है, ऐसे ही संसार के, इन्द्रियों के विषय-विकारों में सबका मन भटकता रहता है। त्रिलोकी में ऐसे कोई विरले पूर्वापर के जानकार (सृष्टि के पहले जो था और सृष्टि के बाद भी जो रहेगा, ऐसे ब्रह्म को जाननेवाले) आत्मज्ञानी हैं, जो आत्मसूर्य में प्रतिष्ठित हुए हैं और सूर्य की नाईं चमकते हैं। सूर्य की चमक और उनकी चमक में थोड़ा फर्क है। सूर्य की चमक अंधकार तो मिटाती है लेकिन तपन भी देती है और ज्ञानी की चमक अंतःकरण का अंधकार मिटाती है व तपन नहीं आत्मशीतलता तथा पुण्य का पुंज दे देती है।

त्रिलोकी में सबसे श्रेष्ठ बुद्धिमान कौन है ? त्रिलोकी में, केवल मृत्युलोक की बात नहीं है !

एक महापुरुष हिमालय की यात्रा पर जा रहे थे। उनके साथ और भी कुछ साधु थे। पहाड़ी लोगों का कोई उत्सव था। वे अपनी पहाड़ी भाषा में कोई गीत गा रहे थे। एक साधु बोला : ये देवी का गीत गाते हैं। किसीने कहा : फलाना गीत गाते हैं। साधुओं की आपस में चर्चा हुई कि आखिर ये गाते क्या हैं ? उनमें जो मुख्य संत थे आत्मज्ञानी, बुद्धियोगी, उनसे पूछा गया, ''बाबाजी ! आखिर ये क्या गा रहे हैं ?''

बाबाजी ने कहा : ''जो भी गाते हैं वे एक से ही गा रहे हैं, एक को ही गा रहे हैं और उस एक के लिए ही गा रहे हैं। क्या गाते हैं, यह गाते हैं...- इस माया में मत पड़ो। जहाँ से गाते हैं और जिसके लिए गाते हैं उसको जान लो बस !''

वह है बुद्धिमान ! बाकी लोग बाल की खाल उतार-उतार के थक गये। बड़े-बड़े साहब होकर कुछ नहीं हाथ लगता।

जैसे शूकर अशुद्ध स्थान में, नालियों में रहते हैं फिर भी अपनेको खुश मानते हैं, भाग्यशाली मानते हैं, ऐसे ही इस लोक के भोग या देवलोक के भोगों में जो अपनेको गिराता है और अपनेको भाग्यशाली या सुखी मानता है वह बुद्धिमान नहीं है किंतु जो आत्मसुख में अपनेको लाता है, जिसने अपने आत्मा-परमात्मा का अनुसंधान करके संसार के कीचड़ से, विकारों से, छोटी-छोटी बातों से अपनेको ऊपर उठा लिया वही त्रिभुवन में बुद्धिमान है। □

मनुष्य जिस-जिस कामना को छोड़ देता है, उसीकी ओर से सुखी हो जाता है, कामना के वशीभूत होकर तो वह सर्वदा दुःख ही पाता है। दुःख, निर्लज्जता और असंतोष- ये काम और क्रोध से ही उत्पन्न होनेवाले हैं। (महाभारत)

महान भगवद्भक्त प्रह्लाद

(गतांक से आगे)

राजा बलि की बातें प्रह्लादजी के हृदय में वज्र के समान लगीं । उनके सात्त्विक हृदय में भी (नाटकवत्) क्रोध आ गया, फिर भी उन्होंने शांत भाव से कहा : ''हे मूढ़ बलि ! तू उस करुणा-वरुणालय की निन्दा कर अपनी जिह्वा को कलुषित क्यों कर रहा है ? मैं जानता हूँ कि भावी प्रबल है, वह टलनेवाली नहीं । अतएव तेरी बुद्धि नष्ट हो गयी है । अस्तु, तू जैसा करेगा वैसा तुझको फल मिलेगा किंतु मेरे सामने भगवान की निन्दा कर मेरे हृदय को कष्ट न दे । जा, तू शीघ्र चला जा, यहाँ तेरा कुछ काम नहीं ।''

प्रह्लादजी के शापतुल्य वचनों को सुनकर बलि को बड़ा संताप हुआ किंतु उनके लाख गिड़गिड़ाने पर भी प्रह्लादजी ने उनकी ओर आँख उठाकर नहीं देखा। ऐसे परम भक्तों के जीवन में संत तुलसीदासजी के निम्नलिखित वचन साकार होते दिख पड़ते हैं :

जिनके प्रिय न राम बैदेही ।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही ।

राजा बलि अपनी राजधानी को वापस गये । प्रह्लादजी अपने पापों के प्रायश्चित्तस्वरूप हरिकीर्तन करने लगे । प्रह्लादजी जानते थे :

न केवलं यो महतोऽपभाषते
शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक् ।

'जो बड़ों की निंदा करता है केवल वही नहीं, प्रत्युत जो उससे निंदा सुनता है वह भी पाप का भागी होता है ।'

प्रह्लादजी के हृदय में बड़ी ग्लानि हुई और राजा बलि के प्रति पूर्व में उनके जो सुन्दर भाव थे वे जाते रहे ।

अंत में वही हुआ जो प्रह्लादजी ने कहा था । दैवी सम्पदा की रक्षा तथा आसुरी भाव व शक्ति को मिटाकर सृष्टि का संतुलन बनाये रखने के लिए भगवान ने अदिति के गर्भ से 'वामन' अवतार लिया । उन्होंने राजा बलि के सारे ऐश्वर्य और प्रभुत्व को दान के रूप में ले लिया । राजा बलि न केवल राजा से रंक बन गये किंतु राजाधिराज से भगवान वामन के बन्दी बन गये । तब उनको अपने पितामह प्रह्लादजी का स्मरण हुआ और उन्होंने **'त्राहि माम्'** कहकर उनको पुकारा । प्रह्लादजी तो दिव्य दृष्टिवाले थे । उन्होंने देखा कि अब बलि को अपने पापों का फल मिल गया है और उसका हृदय प्रायश्चित्त से शुद्ध हो गया है । उसके अभिमान का मद लोप हो गया है । तब वे उसकी रक्षा के लिए और भगवान वामन की अपूर्व मूर्ति के दर्शन के लिए वहीं जा पहुँचे जहाँ भगवान वामन ने अपने दाता राजा बलि को बन्दी बना रखा था ।

परम भागवत प्रह्लादजी के अनुरोध से राजा बलि बंधनमुक्त किये गये तथा भगवान ने बलि को पाताल का राज्य और भावी मन्वंतर में इन्द्रपद की प्राप्ति का वर दिया । बलि को भगवान द्वारा यह भी वर प्राप्त हुआ कि पाताल में नित्य प्रातःकाल वे अपने उसी वामनरूप से राजा बलि को उनके द्वार पर ही जाकर दर्शन दिया करेंगे । बलि को मिला यह तीसरा अलभ्य वरदान सृष्टि के आरम्भ से आज तक के इतिहास में एक अपूर्व बात थी लेकिन जिन भगवान की लीला ही आश्चर्यमयी है और जिनकी अहैतुकी कृपा प्रसिद्ध है तथा जिनकी भक्तवत्सलता एवं भक्ति-महिमा

के उपाख्यानों का कोई अंत नहीं है, उनके लिए ऐसा वर देना कोई अचरज की बात नहीं है।

जब राजा बलि का अभिमान शांत हुआ, तब उन्हें भगवान के चतुर्भुज रूप के दर्शन हुए तथा रुष्ट हुए उनके पितामह फिर संतुष्ट हुए। संसार में प्रह्लादजी की ही कृपा से राजा बलि का यश चारों ओर फैल गया और दैत्यराज राजा बलि, जो किसी समय भगवान विष्णु को देवताओं का पक्षपाती, अपने से निर्बल तथा परब्रह्म परमात्मा नहीं, एक व्यक्ति विशेष समझने लगे थे, वे ही बलि अनन्य भगवद्भक्त और प्रातःस्मरणीय हो गये।

प्रह्लादजी पुनः अपने तपोवन को चले गये और परमात्मचिंतन में निमग्न हो गये किंतु उनके हृदय में यह भाव उत्पन्न हुआ कि जब तक यह शरीर बना रहेगा तब तक दैत्यकुल का नाता छूट नहीं सकता। दैत्यकुल में मेरे ही पुत्र, पौत्रों एवं प्रपौत्रों में न जाने कैसे-कैसे आसुरी भाव के प्राणी उत्पन्न हुए हैं और भविष्य में होते रहेंगे। वे उत्पात से विरत न होंगे और उत्पाती प्राणियों पर विपत्ति का आना स्वाभाविक है। जब वे विपत्ति में पड़ेंगे तब मेरा स्मरण अवश्य ही करेंगे और इस प्रकार मुझे संसार-त्यागी होकर भी बारम्बार दैत्यकुलानुसंगी होना पड़ेगा एवं अपने आराध्य देव भगवान को बारम्बार कष्ट देना पड़ेगा, अतएव अब इस शरीर से संबंध छोड़ना ही अच्छा है। इसी विचार से परम भागवत प्रह्लादजी ने भगवद्-चिंतन में निमग्न हो अपनी जीवनलीला समाप्त की लेकिन वे अपनी परम पावनी कथा को चिरकाल के लिए पतितपावनी गंगा के समान मानव-समाज के तरण-तारण के लिए छोड़ गये।

जिन्हें माँ के गर्भ में ही देवर्षि नारदजी द्वारा प्रदत्त भगवद्-ज्ञान का अमृतपान करने का सौभाग्य मिला तथा उन्हींसे दीक्षा प्राप्त करने का परम सौभाग्य भी प्राप्त हुआ; जिनकी कठिन परीक्षा बाल्यकाल ही में शस्त्रों के आघात, पर्वतों से गिराये जाने, समुद्र में डुबाये जाने, अग्नि में जलाये जाने, विष के पिलाये जाने और साँपों के द्वारा कटवाये जाने से ली गयी, फिर भी जिन्होंने भगवद्भक्ति एवं भगवन्नाम को नहीं छोड़ा; युवाकाल में सम्राट के पद पर रहकर भी जो शांत और जितेन्द्रिय थे, एक स्त्री-व्रती और एक नारी- ब्रह्मचारी थे तथा आतंक एवं अत्याचार से नहीं अपितु अपने शील-सौन्दर्य से तीनों लोकों के प्रभु थे; जिन्होंने कारागार में नहीं, प्रेमागार में सभी दिक्पालों और देवराज इन्द्र को भी अपने वशीभूत कर रखा था; महावैभव के धनी होने पर भी जिन्हें सदैव विरक्तता ही प्रिय थी उन प्रह्लादजी की महिमा कौन गा सकता है ?

प्रह्लादं सकलापत्सु यथा रक्षितवान् हरिः ।
तथा रक्षति यस्तस्य शृणोति चरितं सदा ॥

'जिस प्रकार समस्त विपत्तियों के समय करुणानिधान भगवान हरि ने प्रह्लादजी की रक्षा की, उसी प्रकार वे उनकी भी सर्वदा विपत्तियों से रक्षा करते हैं जो इस चरित्र को सुनते हैं।' **(समाप्त)** □

गिफ्ट में दें 'ऋषि प्रसाद'

सबके हृदय में विराजमान मेरे गुरुदेव को प्रणाम !

पहले मैं अपनी सहेलियों को उनके बर्थ डे या मैरेज एनीवर्सरी पर या उनके बच्चों के बर्थ डे पर रु. ५०/- या इससे ज्यादा लिफाफे में डालकर या उसका गिफ्ट खरीदकर देती थी लेकिन गुरुदेव ने प्रेरणा दी कि उनको 'ऋषि प्रसाद' के सदस्य बनाओ और मैंने लोगों को गिफ्ट में 'ऋषि प्रसाद' की सदस्यता देनी शुरू की। इसका परिणाम यह हुआ कि जो लोग पहले 'ऋषि प्रसाद' पढ़ी न होने से उसके सदस्य बनने के लिए मना करते थे, वे गिफ्ट के माध्यम से उसे पढ़कर दूसरे वर्ष स्वयं ही सदस्य बनने के लिए आये और किन्हींको हम पूछने गये तो वे सदस्य बन गये।

- सुधा शास्त्री, जयपुर (राज.).

तेरा तुझको देत हैं, क्या लागत हैं मोर

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

जो कुछ तुम्हें दिया गया है वह तुम्हारा नहीं है लेकिन देनेवाला (परमेश्वर) ऐसी युक्ति से देता है कि लेनेवाला समझता है कि मेरा है। उसकी वस्तु का अगर ठीक ढंग से उपयोग करते हो तो उससे अनन्त गुनी प्रसन्नता वह तुम्हें देगा।

एक सम्राट ने अपने तीन बेटों को बुलाकर कहा कि ''पुत्रों ! तुम तीनों को मैं एक-एक बोरा फूलों के बीज दिये जा रहा हूँ। मैं यात्रा करके दो-ढाई साल बाद आऊँगा। इन्हें सुरक्षित रखना। ये केवल एक बोरा बीज नहीं हैं इन पर तुम्हारे भाग्य की नींव है। जो इन्हें ठीक-से सँभालेगा वही राज्य का उत्तराधिकारी बनेगा।''

एक लड़के ने सोचा कि 'ढाई साल तक इन्हें सँभालना होगा। इन पर मेरी तकदीर लिखी है।'

उसने तिजोरी बनवाकर उसमें बीजों को भर दिया। दो ताले लगाकर चाबी भी सुरक्षित जगह पर रख दी। अब वह निश्चिंत हो गया।

दूसरे ने सोचा कि 'बीजों को ढाई साल तक सँभालना सरल नहीं है। क्या पता इनमें घुन लग जायें, ये सड़ जायें। इन्हें बेच देता हूँ। जब पिताजी आयेंगे तब उन्हीं पैसों से खरीद लूँगा।'

उसने बीज बेच दिये। तीसरे ने सोचा कि 'ताला लगाकर भी सुरक्षित नहीं रख सकते हैं। अभी बेच दें तो उस समय ऐसे मिलें-न मिलें कुछ निश्चित नहीं है।'

उसने बीज बो दिये। बो दिये तो महल के चारों तरफ सुहावनी-सुहावनी फुलवारी बन गयी। फूल बिकते रहे। बीज हुए तो बीज भी बिकते गये।

जब सम्राट आये तो पहले ने ताले खोले। उसमें कचरा निकला। दूसरे से पूछा तो वह बोला : ''अभी खरीदकर आता हूँ।''

तीसरे से पूछा : ''तेरे बीज कहाँ हैं ?''

''चलो दिखाता हूँ।''

महल की छत पर ले गया।

''यह सारी जो फुलवारी है आपके बीजों की है। गोदाम जो भरा है वह उन्हीं बीजों का है।''

बाप बेटे को छाती से लगाकर बोला : ''तू सच्चा उत्तराधिकारी है। मेरे राज्य को भी बढ़ायेगा, प्रजा का पोषण भी करेगा।''

ऐसे ही यह शरीर भी हमारी प्रजा है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन, प्राण और बुद्धि-इनको अगर व्यक्तिगत सुख में लगाते हैं तो यह शरीर सड़ जाता है, प्रमादी, रोगी हो जाता है। शरीर को स्वर्गादि के लालच में कर्मकांडों में अगर बेचते हैं तो भी ठीक नहीं है लेकिन यह जहाँ से आया है, अगर उस विदेही आत्मा के लिए लगा देते हैं तो अनन्त सामर्थ्य के द्वार खुल जाते हैं, जैसे बीज जहाँ से आया वहीं लगाया तो अनन्त हो गया। वृत्ति जहाँ से उठती है, संकल्प-विकल्प और निर्णय हो-हो के जिसमें बदल जाते हैं उस अबदल आत्मा में अनन्त-अनन्त संभावनाएँ बीजरूप में हैं। दीर्घ प्रणव व विश्रांति साधना से तुम्हारे जीवन में सर्वांगीण विकास की महक आयेगी। ☐

पूज्य बापूजी के आगामी सत्संग कार्यक्रम

✲ राउरकेला (उड़ीसा), दिनांक : ५ व ६ फरवरी। सत्संग स्थल : उदित नगर ग्राउंड।

✲ भुवनेश्वर (उड़ीसा), दिनांक : ८ से १० फरवरी, सत्संग स्थल : केपिटल हाईस्कूल ग्राउंड, यूनिट-३.

उत्तम संतानप्राप्ति के लिए

वास्तव में खनिज, नदी आदि देश की सच्ची सम्पत्ति नहीं है अपितु ऋषि-परम्परा के पवित्र संस्कारों से सम्पन्न तेजस्वी बालक ही देश की सच्ची सम्पत्ति है। इसलिए संतानप्राप्ति के इच्छुक दंपतियों को चाहिए कि वे ब्रह्मज्ञानी संतों-महापुरुषों के दर्शन-सत्संग का लाभ लेकर स्वयं सुविचारी, सदाचारी एवं पवित्र बनें। साथ ही उत्तम संतानप्राप्ति के नियमों को जान के शास्त्रोक्त रीति से शुभ मुहूर्त में गर्भाधान कर परिवार व देश का नाम रोशन करनेवाली उत्तम संतान को जन्म दें। गर्भाधान के लिए २० फरवरी २००८ तक की ग्रहदशा बहुत ही अनुकूल होने से उच्च आत्माएँ पृथ्वी पर आयेंगी।

उत्तम संतानप्राप्ति हेतु सर्वप्रथम पति-पत्नी का तन-मन स्वस्थ होना चाहिए। वर्ष में केवल एक ही बार संतानोत्पत्ति हेतु समागम करना हितकारी है।

गर्भाधान के लिए समय :

✲ ऋतुकाल की उत्तरोत्तर रात्रियों में गर्भाधान श्रेष्ठ है लेकिन ११वीं व १३वीं रात्रि वर्जित है।

✲ यदि पुत्र की इच्छा हो तो पत्नी को ऋतुकाल की ८, १०, १२, १४ व १६वीं रात्रि एवं यदि पुत्री की इच्छा हो तो ऋतुकाल की ५, ७, ९ या १५वीं रात्रि में से किसी एक रात्रि का शुभ मुहूर्त पसंद करना चाहिए।

✲ रजोदर्शन दिन को हो तो वह प्रथम दिन गिनना चाहिए। सूर्यास्त के बाद हो तो सूर्यास्त से सूर्योदय तक के समय के तीन समान भाग कर प्रथम दो भागों में हुआ हो तो उसी दिन को प्रथम दिन गिनना चाहिए। रात्रि के तीसरे भाग में रजोदर्शन हुआ हो तो दूसरे दिन को प्रथम दिन गिनना चाहिए।

✲ पूर्णिमा, अमावस्या, प्रतिपदा, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, सूर्यग्रहण, चंद्रग्रहण, पर्व या त्यौहार की रात्रि, श्राद्ध के दिन, चतुर्मास, प्रदोषकाल (त्रयोदशी के दिन सूर्यास्त के निकट का काल), क्षयतिथि (दो तिथियों का समन्वयकाल) एवं मासिक धर्म के चार दिन समागम नहीं करना चाहिए।

✲ माता-पिता की मृत्युतिथि, स्वयं की जन्मतिथि, नक्षत्रों की संधि (दो नक्षत्रों के बीच का समय) तथा अश्विनी, रेवती, भरणी, मघा, मूल इन नक्षत्रों में समागम वर्जित है।

✲ दिन में समागम आयु व बल का बहुत ह्रास करता है। गर्भाधान हेतु सप्ताह की रात्रियों के शुभ समय इस प्रकार हैं :

रवि	सोम	मंगल	बुध
८ से ९	१०.३० से १२	७.३० से ९	७.३० से १०
१.३० से ५	१.३० से ४	१०.३० से १.३०	३ से ४.३०
गुरु	**शुक्र**	**शनि**	
१२ से १.३०	९ से १०.३०	९ से १२	
३ से ५	१२ से ३.३०		

✲ रात्रि के शुभ समय में से भी प्रथम १५ व अंतिम १५ मिनट का त्याग करके बीच का समय गर्भाधान के लिए निश्चित करें।

गर्भधारण के पूर्व कर्तव्य :

✲ दंपति की स्थिति शारीरिक थकान व मानसिक तनाव से मुक्त हो। परिवार में वाद-विवाद या अचानक मृत्यु की घटना न घटी हो।

✲ आध्यात्मिकता बढ़े इसलिए दोनों नथुनों से लम्बे, गहरे श्वास लें व भगवत्कृपा, आनंद, प्रसन्नता, ईश्वरीय ओज को भीतर भर के श्वास रोकें, मन में सद्भाव को विचारें। भगवन्नाम जपकर मलिनता, राग-द्वेष आदि अपने मानसिक दोष याद कर फूँक मारते हुए उन्हें श्वास के साथ बाहर फेंकें। गर्भाधान के पूर्व ५ से ७ दिन रोज ७ से १० बार यह प्रयोग करें। शयनगृह हवादार, स्वच्छ, सात्त्विक धूप के वातावरण से युक्त हो। कमरे में अनावश्यक सामान व काँटेदार वनस्पति न हो। दंपति सफेद

या हलके रंगवाले वस्त्र पहनें एवं हलके रंग की चद्दर बिछायें। इससे प्राप्त प्रसन्नता व सात्त्विकता दिव्य आत्माएँ लाने में सहायक होगी ।

❋ रात्रि व समय कम-से-कम तीन दिन पूर्व तय कर लेना चाहिए। निश्चित रात्रि में शाम होने से पूर्व पति-पत्नी को स्नान कर स्वच्छ वस्त्र पहन के सद्गुरु व इष्टदेव की पूजा करनी चाहिए।

❋ दंपति चित्तवृत्तियाँ परमात्मा में स्थिर करके उत्तम आत्माओं को प्रार्थना करते हुए उनका आवाहन करें : 'हे ब्रह्माण्ड में विचरण कर रहीं सूक्ष्म रूपधारी पवित्र आत्माओ ! हम दोनों आपको प्रार्थना कर रहे हैं कि हमारे घर, जीवन व देश को पवित्र तथा उन्नत करने के लिए आप हमारे यहाँ जन्म धारण करके हमें कृतार्थ करें। हम दोनों अपने शरीर, मन, प्राण व बुद्धि को आपके योग्य बनायेंगे।'

❋ पुरुष दायें पैर से स्त्री से पहले शय्या पर आरोहण करे और स्त्री बायें पैर से पति के दक्षिण पार्श्व में शय्या पर चढ़े। तत्पश्चात् निम्नलिखित मंत्र पढ़ना चाहिए :

अहिरसि आयुरसि सर्वतः प्रतिष्ठासि धाता त्वां दधातु विधाता त्वां दधातु ब्रह्मवर्चसा भवेति। ब्रह्मा बृहस्पतिर्विष्णुः सोम सूर्यस्तथाऽश्विनौ। भगोऽथ मित्रावरुणौ वीरं ददतु मे सुतम् ॥

'हे गर्भ ! तुम सूर्य के समान हो। तुम मेरी आयु हो, तुम सब प्रकार से मेरी प्रतिष्ठा हो। धाता (सबके पोषक ईश्वर) तुम्हारी रक्षा करें, विधाता (विश्व के निर्माता ब्रह्मा) तुम्हारी रक्षा करें। तुम ब्रह्मतेज से युक्त होओ।

ब्रह्मा, बृहस्पति, विष्णु, सोम, सूर्य, अश्विनीकुमार और मित्रावरुण जो दिव्य शक्तिरूप हैं, वे मुझे वीर पुत्र प्रदान करें।'

(चरक संहिता, शारीरस्थान : ८.८)

❋ दंपति गर्भ-विषय में मन लगाकर रहें। इससे तीनों दोष अपने-अपने स्थानों में रहने से स्त्री बीज को ग्रहण करती है। विधिपूर्वक गर्भधारण करने से इच्छानुकूल फल प्राप्त होता है। □
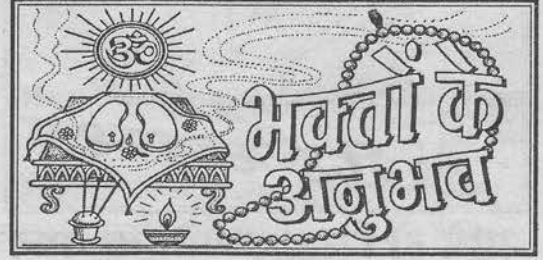
असीम कृपा व मंत्र का प्रभाव

२३ अक्टूबर २००७ को मेरे पेट में जानलेवा दर्द हुआ। कानपुर के अनुभवी डॉक्टरों ने संपूर्ण जाँच करने के पश्चात् कहा कि लीवर व किडनी फंक्शन टेस्ट, ब्लड व ब्लड शूगर टेस्ट की रिपोर्ट बहुत ही खराब है। इन्फेक्शन सारे शरीर में फैल गया है, कुछ कह नहीं सकते। तुरंत भरती होना पड़ेगा परंतु मैं पूनम दर्शन के लिए दिल्ली रवाना हो गया। वहाँ मैंने आश्रम के आयुर्वैदिक दवाखाने से औषधियाँ लीं व पूज्य गुरुदेव लीवर के लिए जो मंत्र बताते हैं उसकी पूज्यश्री के सम्मुख बैठकर ५१ मालाएँ कीं। दिल्ली से लौटने के बाद जब मैं अस्पताल में भरती होने गया, तब डॉक्टरों ने पुनः जाँच करने के पश्चात् कहा कि 'आपकी सारी रिपोर्ट तो नार्मल है। अब आपको भरती होने की क्या आवश्यकता है ?'

मेरा यह प्रत्यक्ष अनुभव देखने के बाद वे डॉक्टर भी ऋषि प्रसाद पत्रिका के सदस्य बन गये। यह सब पूज्य गुरुदेव की असीम कृपा व मंत्र का प्रभाव है। **– श्री के.के. गुप्ता, कानपुर (उ.प्र.).**

गुर्दों के विकारों में चमत्कारिक प्रयोग

मकई के भुट्टे के बाल ५० ग्राम, २ लीटर पानी में धीमी आँच पर उबालें। १ लीटर पानी शेष रहने पर छान लें। इस पानी के सेवन से गुर्दे (किडनी) की सूक्ष्म कोशिकाओं (nephrons) की शुद्धि होकर वृक्कशोथ, वृक्क अकर्मण्यता (renal failure), पथरी आदि गुर्दों के विकारों में चमत्कारिक लाभ होता है।

सावधानी : टमाटर, दही आदि खट्टी चीजों तथा बैंगन, नमकीन, तले हुए, मसालेदार पदार्थों का सेवन वर्जित है।

रात्रि में सिद्ध उष्णोदक पान

अग्नि पर उबालकर औटाये हुए जल को सिद्ध उष्णोदक कहते हैं । रात्रि में औटाया हुआ गर्म जल पीने से कफ, आमवात (गठिया) व मेदोरोग (मोटापा) नष्ट होता है । इससे खाँसी, श्वास (दमा) व बुखार में भी राहत मिलती है। सिद्ध उष्णोदक पान से मूत्राशय की शुद्धि होती है व जठराग्नि प्रदीप्त रहती है । यथा :

श्लेष्मामवातमेदोघ्नं बस्तिशोधन दीपनम् ।
कासश्वासज्वरहरं पीतमुष्णोदकं निशि ॥

(शार्ङ्गधर संहिता, मध्यम खण्ड : २.१८१)

चार भाग जल में से १ भाग जल औटाकर शेष ३ भाग जल वायुनाशक होता है । २ भाग औटाकर आधा शेष जल पित्तनाशक व ३ भाग औटाकर चतुर्थांश शेष जल कफनाशक होता है ।

दिन में पेयपान-विधि :

निशान्ते पिबेत् वारि दिनान्ते पयः पिबेत् ।
भोजनान्ते पिबेत् तक्रं वैद्यस्य किं प्रयोजनम् ?

तात्पर्य- रात्रि के अंत में अर्थात् उषाकाल में जलपान करें । रात का रखा हुआ पानी प्रातः पीने से शरीर की आभ्यंतर शुद्धि हो जाती है ।

दिन के अंत में अर्थात् सूर्यास्त के बाद दुग्धपान करें । इससे शुक्रधातु की वृद्धि व नेत्रों का तर्पण होता है । दिन भर में सेवन किये गये खट्टे-तीखे पदार्थों से उत्पन्न दाह का शमन हो जाता है ।

मध्याह्न में भोजन के बाद तक्रपान करें । ताजे दही में पानी मिलाकर खूब मथकर बनायी गयी छाछ पीने से भोजन का सम्यक् पाचन हो जाता है व मन तृप्त होता है ।

अगर इस प्रकार अन्न-जल का विधिवत् सेवन किया जाय तो फिर वैद्य, हकीम, डॉक्टर की आवश्यकता ही क्या ?

कायाकल्प

जिस औषधि-प्रयोग से शरीर में नयी कोशिकाएँ उत्पन्न होकर निरामय दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है, उस प्रयोग को कायाकल्प कहते हैं । आयुर्वेद में कायाकल्प के अनेक प्रकार के प्रयोगों का वर्णन मिलता है ।

आँवला, भांगरा, तिल व पुराने गुड़ के विधिवत् सेवन से शरीर का कायाकल्प हो जाता है । यह कायाकल्प शरीर को नवजीवन प्रदान करता है ।

कायाकल्प विधि : १०० ग्राम आँवला चूर्ण, २०० ग्राम भांगरा चूर्ण, २०० ग्राम पिसे हुए काले तिल व १ वर्ष पुराना गुड़ अथवा शक्कर ४०० ग्राम - इन सबको मिला लें ।

प्रतिदिन प्रातः ११ ग्राम मिश्रण पानी के साथ लें । उसके बाद २ घंटे तक कुछ भी न लें । फिर दूध पीयें । भोजन में दूध व चावल लें । इस प्रयोग के दौरान केवल दूध अथवा दूध-चावल का ही सेवन करना आवश्यक है । दूध देसी गाय का हो व साठी के चावल हो तो उत्तम ।

लाभ : कल्प शुरू करने के १ माह बाद लाभ दिखायी देने लगते हैं । १ महीने में सभी प्रकार के पेट के विकार ठीक हो जाते हैं । तीन महीने सेवन करने से वाणी अत्यन्त मधुर हो जाती है। स्मरणशक्ति बढ़ने लगती है। शारीरिक पीड़ा, जोड़ों का दर्द, अनिद्रा और चिड़चिड़ापन मिट जाता है।

अगर १ वर्ष तक इसका विधिवत् सेवन किया जाय तो सफेद बाल काले हो जाते हैं। दाँत मृत्युपर्यन्त दृढ़ रहते हैं । त्वचा झुर्रियों से रहित हो जाती है । श्रवणशक्ति व नेत्रज्योति तीव्र हो जाती है। बल, वीर्य, बुद्धि व स्मृति में वृद्धि होकर चिरयौवन व दीर्घ आयुष्य की प्राप्ति होती है । ईश्वर-उपासना, दानशीलता, सदाचार, परोपकार, व ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करने से इस कल्प के संपूर्ण लाभ प्राप्त होते हैं ।

आप इसे स्वयं बना सकते हैं अथवा आश्रमों या समितियों के सेवाकेन्द्रों से प्राप्त कर सकते हैं । □

सूरत आश्रम (गुज.) में 'सहज सत्संग साधना समारोह' की पूर्णाहुति के बाद पूज्य बापूजी अमदावाद आश्रम में पधारे। यहाँ पूज्यश्री के एकांतवास के दौरान भक्तों को सत्संग-लाभ के साथ-साथ ध्यान की गहराइयों में प्रवेश पाने के प्रयोग सीखने को मिले। पूज्यश्री ने अनोखे अंदाज में ईश्वरप्राप्ति की महत्ता बतायी : ''ईश्वरप्राप्ति के बिना जिनको चलता है वे तो चलते ही रहते हैं चौरासी लाख योनियों में। वे माताओं के गर्भों में भटकते ही रहते हैं। कभी कुत्ता बनकर चलते हैं, कभी घोड़ा बनकर चलते हैं, कभी गधा बनकर चलते हैं, कभी कीड़ा-मकौड़ा बनकर चलते हैं - चलते ही रहते हैं। ईश्वरप्राप्ति के बिना जिनका नहीं चलता उनके हृदय में ईश्वर प्रकट हो जाता है।''

४ जनवरी को पूज्यश्री ने अमदावाद से डीसा (गुज.) की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में गाँधीनगर, धामणवा व मेहसाणा आश्रमों को पूज्यश्री के आध्यात्मिक स्पंदनों का लाभ मिला। पूज्यश्री के डीसा प्रस्थान की खबर पहले ही मिलने से पालनपुर समिति और शहर के गणमान्य व्यक्ति मार्ग पर ही पूज्यश्री के पधारने का बेसब्री से इंतजार कर रहे थे। वहाँ पहुँचते ही पुष्पहार व आरती से पूज्यश्री का भावभीना स्वागत हुआ। मेहसाणा, पालनपुर समितियों ने सत्संग-कार्यक्रम की अपनी पुरानी पुकार दुहरायी।

दर्शन-सत्संग का प्रसाद बाँटते हुए रात्रि को पूज्यश्री का डीसा में आगमन हुआ। पूर्व में यह स्थान ७ वर्ष तक पूज्यश्री का साधनास्थल रह चुका है।

५ व ६ जनवरी को सम्पन्न हुए इस सत्संग समारोह में पूज्यश्री ने कहा : ''निंदा ऐसी चीज है जो विष को भी मात कर दे। जहर जिस बोतल में रहता है उसका कुछ नहीं बिगड़ता, जो पीता है उसको मारता है लेकिन जो निंदा करता है उसका हृदय तो खराब होता ही है, सुननेवाले के मन और विचार भी बिगड़ते हैं। जिस किसीकी बातें सुनना, करना, अपने दिमाग में जगत की सत्यता घुसेड़ना - ये हीन मनुष्यों के लक्षण हैं, तुच्छात्माओं के लक्षण हैं। जो परमात्मा के निमित्त ही सोच-विचार, परमात्मा के निमित्त ही सेवाकार्य और शक्ति का उपयोग करते हैं वे महान आत्मा हैं। जो मध्यम कर्म में अपना समय, शक्ति खर्च करते हैं वे मध्यम आत्मा हैं, मानव आत्मा हैं। मनुष्यात्मा रहना, तुच्छात्मा बनना या महान आत्मा बनना मनुष्य के हाथ में ही है।''

७ जनवरी की शाम पूज्य बापूजी का रापर (गुज.) में आगमन हुआ। रापरवासी सत्संग-दर्शन से निहाल हुए। ८ जनवरी की दोपहर को ममुआरा (जि. भुज, गुज.) में बने आश्रम का उद्घाटन पूज्यश्री के करकमलों से हुआ।

९ व १० जनवरी को भुज के व्यायामशाला मैदान में लगे विशाल मंडप में दो दिवसीय सत्संग-यज्ञ का आयोजन हुआ। प्रथम सत्र में ही श्रद्धालुओं के उमड़े हुए सैलाब ने मंडप को नन्हा कर दिया था। संत-समागम और हरिकथा को दुर्लभ बताते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''जिनको संतों-महापुरुषों का संग मिला है उनके जैसा भाग्यवान कोई नहीं। यदि जीवन में बड़ी कोई वस्तु मिले तो ही आप छोटी-छोटी वस्तुओं को छोड़ सकते हो। आप संत-समागम व भक्ति को पाकर ही दुःख, चिंता और विकारों से ऊपर उठ सकते हो।''

१० जनवरी की शाम गाँधीधाम के नाम रही। ११ जनवरी को पूज्य बापूजी का आगमन अमदावाद आश्रम में हुआ। १३ से १६ जनवरी

तक 'उत्तरायण ध्यान योग शिविर' एवं १५ व १६ जनवरी को 'विद्यार्थी शिविर' का आयोजन हुआ।

सभी साधकों को प्रातः पंचगव्य के प्रसाद के साथ ज्ञान-ध्यान का प्रसाद भी मिला। इस प्रकार इस शिविर में आंतरिक व बाह्य दोनों प्रकार के प्रसाद द्वारा तन की पुष्टि एवं अंतःकरण की शुद्धि में चार चाँद लगाने का सुन्दर आयोजन किया गया था।

इस शिविर में पूज्यश्री व साधकों के बीच प्रश्नोत्तर का भी आयोजन हुआ। साधकों के जीवन की अनेक गुत्थियाँ पूज्यश्री ने सुलझायीं। **परिप्रश्नेन सेवया...** जो ज्ञान आत्मज्ञानी महापुरुषों की खूब सेवा करने पर मिलता था वह दिव्य, अमृतमय ज्ञान ज्ञाननिधान पूज्य बापूजी ने सहज में बरसा दिया।

पूज्यश्री ने सत्संग में परमात्मा की दयालुता पर प्रकाश डाला : ''गृहस्थ-जीवन के तीन सुख माने जाते हैं - आरोग्य-सुख, कौटुम्बिक संवादिता का सुख व संपदा का सुख। दयालु परमात्मा ये तीनों एक साथ किसीके पास नहीं रहने देता। वह जानता है कि यदि दे दूँ तो मेरे बच्चे इनमें फँस जायेंगे, समय खराब करेंगे। आरोग्य अच्छा है तो कुटुम्ब में विसंवादिता होगी। संवादिता है, आरोग्य भी है तो आर्थिक गड़बड़ होगी। आर्थिक मामले में ठीक-ठाक है तो दूसरे दो सुखों में कुछ-न-कुछ ऊँचा-नीचा होकर वहाँ से गड़बड़ मिलेगी। सच्चे सुख के बिना परमात्मा हमारे चित्त को कहीं टिकने नहीं देता, यह उसकी कितनी कृपा है!''

१५ जनवरी को विद्यार्थियों ने पूज्यश्री के मुखारविंद से उत्तम विद्यार्थी के लक्षण जाने और स्मरणशक्ति बढ़ाने की नयी-नयी युक्तियाँ प्राप्त कीं। याद न रहने की समस्या का हल बताते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''जिन विद्यार्थियों को पढ़ा हुआ याद नहीं रहता वे यदि पढ़ते समय जिह्वा को तालु में लगाकर पढ़ेंगे तो उन्हें पढ़ा हुआ याद रहने लगेगा। २० मि.ली. तुलसी-रस अनार के रस में या गुनगुने पानी में च्यवनप्राश मिलाकर बनाये गये घोल में मिलाकर ४० दिन तक लें और सारस्वत्य मंत्र जपें तो यादशक्ति, बुद्धिशक्ति ऐसे विलक्षण लक्षणों से महकती है जिसका शब्दों में वर्णन नहीं होता।''

१९ व २० जनवरी को तमिलनाडू की राजधानी चेन्नै में पूज्य बापूजी के सत्संग का आयोजन हुआ और पूज्यश्री के प्रत्यक्ष दर्शन-सत्संग का सुवर्ण अवसर पाकर तमिलनाडू, केरल, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक से बड़ी संख्या में श्रद्धालुजन उपस्थित हुए। यहाँ सत्संग के रसपान हेतु सनातन धर्म के ८६ समाजों के लोग उपस्थित हुए थे। 'काँची कामकोटि पीठ' के शंकराचार्य श्री जयेन्द्र सरस्वती भी सत्संग स्थल पर आये। उन्होंने कहा : ''बापूजी ध्यान, कीर्तन व सत्संग से समाज की नैतिक उन्नति और स्वास्थ्य का कितना ख्याल रखते हैं! मैंने अभी ऑपरेशन कराया है। मेरे यहाँ आते ही मुझे स्वास्थ्य-लाभ का उपाय बताया। कैसा ख्याल रखते हैं सबका! स्नेह भी भरपूर, सरलता भी उतनी ही व सबको अपने लगते हैं।''

पूज्य बापूजी ने यहाँ के लोगों को आध्यात्मिक ज्ञान के साथ स्वास्थ्य-ज्ञान भी प्रदान किया।

२१ व २२ जनवरी को देश की राजधानी दिल्ली में पौषी पूर्णिमा दर्शन-सत्संग सम्पन्न हुआ। २२ जनवरी की शाम को पूज्यश्री अमदावाद आश्रम में पहुँचे। यहाँ भी सत्संग एवं पूर्णिमा-दर्शन कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। अमदावाद से चेन्नै, चेन्नै से दिल्ली, दिल्ली से अमदावाद एवं अमदावाद से हैदराबाद - इस प्रकार मानवमात्र को स्वस्थ, सुखी एवं सहज जीवन की प्राप्ति हो इस उद्देश्य से बापूजी स्वयं हवामान का बदलाव, लम्बे प्रवास का कष्ट सहन करते हैं। पूज्यश्री के जीवन में **'सर्वभूतहिते रताः'** का ऊँचा आदर्श झलकता है। ❑

पूज्य बापूजी के सत्संग की सी.डी.

1 February 2008
RNP. NO. GAMC 1132/2006-08
WPP LIC NO. GUJ-207/2006-08
RNI NO. 48873/91
DL(C)-01/1130/2006-08
WPP LIC NO.U(C)-232/2006-08
G2/MH/MR-NW-57/2006-08
WPP LIC NO. MH/MR/14/07-08
'D' NO. MH/MR/TECH-47/4/08

पूज्य बापूजी के लोक-मांगल्यकारी प्रवचन अर्थात् लौकिक-आध्यात्मिक उन्नति की कुंजियों, महापुरुषों के प्रेरक प्रसंगों, शास्त्रीय सूत्रों आदि का अद्भुत संगम।
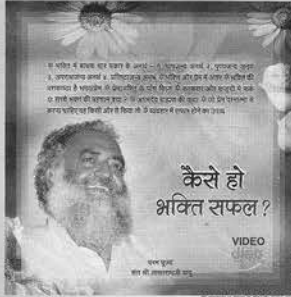
वी.पी.पी. की सुविधा नहीं है। डी.डी., मनीऑर्डर भेजते समय अपनी माँग एवं अपना नाम, पूरा पता, पिनकोड व फोन नं. अवश्य लिखें।
पता : कैसेट विभाग, संत श्री आसारामजी महिला उत्थान आश्रम, साबरमती, अमदावाद-३८०००५.

करहाड, जि. सातारा (महा.) में अन्न, वस्त्र, मिठाई, कम्बल तथा दौसा (राज.) में कम्बल का वितरण ।

नंदिनी नगर, जि. दुर्ग (छ.ग.) तथा पानीपत (हरि.) के गरीबों में कम्बल, स्वेटर आदि का वितरण ।

Posting at Rishi Prasad PSO between 25th Jan. to 10th Feb. Back issue at PSO-AHD * Posting at ND. PSO on 5th & 6th of E.M. * Posting at MBI Patrika Channel on 9th & 10th of E.M.